स्कन्दपुराणान्तर्गतः

मानसखण्डः

परिष्कर्त्ता

आचार्य गोपालदत्त पाण्डेय

॥ श्रीः ॥



स्कन्दपुराणान्तर्गतः

मानसखण्डः

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासोदीरितः

विवृतिकारः सम्पादकश्च

आचार्य गोपालदत्त पाण्डेयः

एम०ए०, व्याकरणाचार्यः

अवकाशप्राप्त उप-शिक्षानिदेशकः (उ०प्र०) तथा

नैनीतालस्थ-ठाकुरदेवसिंहबिष्ट-राजकीय-स्नातकोत्तर-महाविद्यालयीय-

संस्कृतविभागस्य भूतपूर्व आचार्यः अध्यक्षश्च

समायोजकः

श्री लक्ष्मीचन्द्र जोशी

एम०ए०, एल-एल० बी०

न्यायिक अधिकारी, पिथौरागढ़ (उ०प्र०)

वितरक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रस्तावना

उपक्रम

भारतीय संस्कृति की सार्वजनीनता का विस्तृत परिचय पुराणों में ही विशेषतया मिलता है। सामाजिक परिष्कार को विकसित करने में पुराणों की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण रही है। यद्यपि भारतीय धर्म, दर्शन तथा आचारसंहिता आदि के आधारभूत स्रोत वेद ही हैं, तथापि सामान्य जन वैदिक वाङ्मय की दुरुहता से दूर भागता है। कारण यह है कि कहीं-कहीं वेदों की निर्वचनशैली प्रतीकात्मक होने से दुर्बोध हो जाती है। अतः जनमानस तक भारतीयता को पहुँचाना पुराणों का कार्य रहा है। सरल भाषा एवं रोचक आख्यानों के माध्यम से विषय की गम्भीरता को हृदयङ्गम कराने में पुराणों की शैली ने धर्म एवं दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। इस प्रकार वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करने में पुराणों का विस्तृत आयाम अपनी सार्थकता को बनाये हुए है। पौराणिक वाङ्मय निःसन्देह वैदिक सिद्धान्तों के वृहद् व्याख्यान के रूप में मननीय है[1]। महर्षि व्यास ने विशाल वैदिक वाङ्मय को चार रूपों में विभक्त कर स्वयं 'वेदव्यास' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। उन्हें वेदों की दुरुहता का आभास हो चुका था। इस हेतु वे स्वयं उसकी सरलता का उपाय सोचने लगे। उन्होंने रामायण की रचना देखी और आदिकवि वाल्मीकि की रचना को आदर्श मानकर वेदध्वनि को पुराणों में प्रतिध्वनित कर दिया। अतः निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि पुराणों की वाणी में वेद ही बोलते हैं। पुराण के अर्थनिर्णय में वेदार्थ का निर्णय ही प्रतिभासित होता है। 'भक्ति' के माध्यम से प्रतिपादित ज्ञानराशि की व्यापकता ने पुराणों को भारतीय धर्म, संस्कृति एवं साहित्य के प्रत्येक अङ्ग का उपजीव्य बनाने में बड़ा हाथ बटाया है[2]। पुराण की शैली केवल रोचकता तक ही सीमित नहीं है। वह तो वस्तुतः विचक्षणता की कसौटी है। पुराणों के अध्ययन से दृष्टि उन्मीलित होती है। निखिल ब्रह्माण्ड की जिज्ञासा से ओतप्रोत मानवहृदय की अन्तःसलिला सरस्वती पुराणों की धारा में सङ्गमित हो अपने अस्तित्व को बनाये रखती है।

पुराणों के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं का अब कोई स्थान नहीं है। इस शताब्दी के आरम्भ में पुराणों के वर्ण्यविषय को केवल कपोल-कल्पित गाथाओं के रूप में समझा जाता था। उनमें इङ्गित ऐतिहासिक अंशों को मान्यता नहीं दी जाती थी। भौगोलिक विस्तार की ओर ध्यान देने की लोगों में क्षमता नहीं थी। पुराणों में विभिन्न देवों के वर्णन होने के फलस्वरूप उन्हें धार्मिक कटुता एवं रागद्वेष का प्रतीक माना जाता रहा है।

इस सन्दर्भ में दूषित अंग्रेजी शिक्षा ने पुराणों के प्रति विद्वेष फैलाने में कोई कसर नहीं उठा रखी। फिर भी इन भ्रान्त धारणाओं के उन्मूलन होने में कुछ समय लगा। वास्तविकता सामने आई। विदेशी विद्वानों की भी आँखें खुलीं और उन्होंने भी पुराणों का अनुशीलन कर उनकी वास्तविकता बतलाई। तब लोगों को विदित हुआ कि पुराणों में वर्णित आख्यान प्रतीकात्मक हैं। उनमें ऐतिहासिक वृत्त इङ्गित हैं। उनसे आध्यात्मिक रहस्य की भी अभिव्यक्ति होती है। वह तत्त्व भले ही निगूढ़ हो किन्तु अभिव्यक्ति का प्रकार अत्यधिक बोधगम्य है। समग्र वसुमती (पृथ्वी) के संश्लिष्ट भूगोल का वर्णन कर पुनः उसे महाद्वीपों एवं द्वीपों में बड़ी सूक्ष्मता के साथ विभाजित करने की पद्धति वर्तमान युग के सर्वेक्षण कार्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वैज्ञानिक एवं यातायात के साधनों के अभाव में पर्वत शृङ्गों तथा नदियों के उद्गम-स्थानों का निर्धारण करना दुःसाध्य होते हुए भी उन पदयात्रियों एवं पर्वतारोहियों का कार्य विशेष रूप से अनुकरणीय है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न पुराणों में वर्णित विभिन्न देवताओं की उपासना विषमता-परक नहीं है। वह तो समन्वय की भावना से उपासक को अपने मनोनुकूल साधना की ओर प्रवृत्त करने में समाहित हो जाती है। प्रत्येक पुराण में वर्णित प्रमुख देवता अन्य पुराणों में वर्णित देवों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। इस प्रकार तीनों देव—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—एक दूसरे के पूरक माने गए हैं।

रही पौराणिक इतिहास की बात। साधारणतः घटनाचक्र को प्रतिबिम्बित करना ही मुख्यतः इतिहास का विषय माना जाता है। पुराण की दृष्टि कुछ इससे भिन्न है। पुराण के पञ्च लक्षण[1] का महत्त्व इस सम्बन्ध में विचारणीय है। मानव-समाज का इतिहास तभी पूर्ण समझा जाता है, जब उसकी कहानी सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक क्रमबद्ध बतलाई जाय। जब तक मानव-जाति की कथा सृष्टि के आरम्भ से न लिखी जाय तब तक वह अपूर्ण ही समझी जायगी। पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से लेकर प्रलय-पर्यन्त वर्णन मिलता है। इन दोनों किनारों के बीच उत्पन्न होने वाले राजाओं के वंशों तथा उनसे सम्बद्ध प्रमुख राजाओं के चरित्र का वर्णन भी पुराणों में प्रतिपादित है। इस प्रकार की शैली पुराणों की निजी शैली है। फिर भी पाश्चात्य विचारकों ने इस शैली की उपादेयता मानी है। इस सम्बन्ध में एच० जी० वेल्स का मत उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'आउट-लाइन आफ हिस्ट्री' में इस पौराणिक शैली का अनुसरण किया है। उन्होंने इस ग्रन्थ में मानव-समाज का इतिहास लिखने से पहले सृष्टि के आरम्भ से जीव-विकास का इतिहास लिखा है[2]।

पुराणों का लक्ष्य

पुराणों का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक परिष्कार है। समाज को बुराइयों से कैसे दूर रखा जाय—यही उनका लक्ष्य है। उनके समाज का भवन वर्णाश्रम की दृढ़ भित्ति पर

आधारित है। अतः तदनुकूल सदाचार का वर्णन पुराणों में प्रतिपादित है। वर्णाश्रम धर्म के पालन द्वारा समाज के अभ्युदय की चिन्ता पुराणों में की गई है। वर्णाश्रम धर्म के शुद्ध स्वरूप का निर्वचन करने में पुराणों ने अपनी सार्थकता मानी है। सदाचार का स्वरूप बतलाने से पूर्व पुराणों में कदाचार की विभीषिका प्रस्तुत की गई है। जिसके द्वारा अनाचार से अनास्था प्रकट कर समाज का मन सदाचार की ओर प्रवृत्त किया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अर्थवाद का आश्रयण लेने में पुराणकार ने संकोच नहीं किया है। इसके साथ ही उस वर्ण्य-विषय को अतिशयोक्ति अलङ्कार द्वारा बढ़ा चढ़ाकर प्रतिपादित किया जाता है। इस प्रकार की शैली उपासना या वर्ण्य विषय की 'फलश्रुति' बतलाने में प्रयुक्त की गई है। इसका कारण लोगों को सत्कार्य में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित करना है। सत्कर्म द्वारा मानव को सुखी बनाने हेतु पुराणों ने भुक्ति-मुक्ति का आदर्श माना है। वर्तमान में सुख और भावी जीवन में मुक्ति की प्रतिष्ठा द्वारा मानव के कल्याण की कामना इस आदर्श में निहित है। श्रीमद् भागवत में एक प्रभावशाली दृष्टान्त द्वारा इस सिद्धान्त का समर्थन किया गया है। जैसे पिता की सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र स्वतः होता है, वैसे ही निष्काम हो कर्मों का भोग, ईश्वर की कृपा की प्रतिक्षण प्रतीक्षा तथा सच्चे मन से भगवान् का चिन्तन करने से प्राणी स्वतः मुक्ति की ओर अग्रसर होता है[1]।

पुराणों की अवतारणा

सभी पुराणों में पुराण की अवतारणा समान रूप में ही वर्णित है। ब्रह्मा ही पुराणों के प्रथम प्रवक्ता हैं। वैमत्य इस बारे में है कि पुराण का अस्तित्व वेदों के आविर्भूत होने के पूर्व था अथवा बाद में हुआ। मत्स्यपुराण के अनुसार पुराणों का आविर्भाव सर्वप्रथम हुआ[2]। इसके विपरीत श्रीमद्भागवत 'पुराण-साहित्य' को वेदोत्तरकालीन मानता है। अतः पुराण को पञ्चम वेद की संज्ञा दी गई[3]। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह पौराणिक शब्दराशि आरम्भ में समष्टि रूप से मौखिक संहितात्मक रही। उसे पृथक् विभाजित कर वर्णात्मक रूप देकर वेदव्यास ने परिष्कृत रूप दिया है। लोमहर्षण सूत को उसका अध्यापन करा उसके प्रचार-प्रसार का भार उन पर सौंप दिया। लोमहर्षण ने भी अपनी

एक पुराण-संहिता बनाई और इस संहिता को उन्होंने छह शिष्यों को पढ़ाया। 'वायुपुराण' (६१, ५५-५६) में गोत्रज नामों के साथ उनके वैयक्तिक नामों का उल्लेख मिलता है। उन छह शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं—(१) सुमति आत्रेय, (२) अकृतव्रण काश्यप, (३) अग्निवर्चा भारद्वाज, (४) मित्रयु वासिष्ठ, (५) सौमदत्ति सार्वणि तथा (६) सुशमा शांशपायन। इन छहों शिष्यों में से तीन ने अपनी नयी संहितायें बनाई, जिनके नाम हैं—काश्यप, सार्वणि तथा शांशपायन। लोमहर्षण-सहिता के साथ इन तीनों को मिलाकर चार संहितायें निष्पन्न हुईं। ये चारों संहितायें प्रायः समान ही थीं, केवल पाठान्तर मात्र ही इनका विभेदक रहा। शांशपायन को छोड़कर अन्य तीन पुराणसंहिताएँ चार हजार श्लोकों के परिमाण में थीं[१]।

शिष्य-परम्परा के अतिरिक्त वेदव्यास की पारिवारिक परम्परा का भी अन्यत्र उल्लेख मिलता है। उस सम्बन्ध में एक पद्य प्रसिद्ध है—

'व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्॥'

तदनुसार व्यासजी वसिष्ठ के प्रपौत्र, शक्ति के पौत्र तथा पराशर के पुत्र एवं शुकदेव के पिता थे। यह तो वर्तमान युग की पारिवारिक व्यासपरम्परा है। परन्तु इनसे पूर्व २७ व्यास और हो चुके हैं, जिनका निर्देश 'विष्णुपुराण' (३, ३, ७-१८) तथा 'देवीभागवत' (१, ३, २४-३५) में किया गया है। इस प्रकार के व्यास एक प्रकार के पदाधिकारी रहे। यह पदाधिकारी प्रत्येक द्वापर-युग में प्रादुर्भूत होता है और लोकमङ्गल की भावना से वेद-राशि को चार भागों में तथा पुराणसंहिता को १८ भागों में विभक्त (व्यास) कर देता है[२]। २७ व्यासों के नाम भी विष्णुपुराण में इस प्रकार दिये गए हैं—(१) ब्रह्मा, (२) प्रजापति, (३) शुक्राचार्य, (४) बृहस्पति, (५) सूर्य, (६) यम, (७) इन्द्र, (८) वसिष्ठ, (९) सारस्वत, (१०) त्रिधामा, (११) त्रिशिख, (१२) भरद्वाज, (१३) अन्तरिक्ष, (१४) वर्णी, (१५) त्रय्यारुणि, (१६) धनञ्जय, (१७) ऋतुञ्जय, (१८) जय, (१९) भरद्वाज, (२०) गौतम, (२१) हर्यात्मा, (२२) वाजश्रवा, (२३) सोमशुष्मायण तृणबिन्दु, (२४) भार्गव ऋक्ष, (२५) शक्ति, (२६) पराशर तथा (२७) श्रीकृष्णद्वैपायन।

वेदव्यास ने तीन वर्षों तक सतत परिश्रम कर महाभारत जैसे महान् ग्रन्थ की रचना की[३]। इनके पुत्र शुकदेव थे। इन्होंने राजा परीक्षित को भागवत सुना कर मोक्ष प्राप्त कराया। श्रीमद्भागवत में इन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी बतलाया गया है, किन्तु 'देवीभागवत' (१, १४) में इन्हें गृहस्थ बतलाया गया है। गृहस्थ होने पर भी यह आत्मानन्द में

निमग्न रहते थे। उपर्युक्त सिंहावलोकन से यह विदित होता है कि पराशर, वेदव्यास तथा शुकदेव—इन तीन पीढ़ियों में होने वाले मुनियों ने पुराण के अध्ययन तथा प्रसार में अपना जीवन समर्पित कर दिया।

पुराणसंहिता के उपादान

इस सम्बन्ध में विष्णुपुराण का कथन मननीय है। 'विष्णुपुराण के अनुसार आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्पशुद्धि—ये चार पुराणसंहिता के उपादान हैं'[1]। सामान्यतः आख्यान और उपाख्यान-शब्द कथानक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। किन्तु अलग-अलग दोनों शब्दों का प्रयोग होने से उनमें कुछ भेद तो होना चाहिये। भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी के मत में (१) 'आख्यान' शब्द स्वयम् दृष्ट अर्थ के कथन में प्रयुक्त होता है और (२) 'उपाख्यान' शब्द श्रुत अर्थ के कथन को सूचित करता है[2]। इसी प्रकार 'गाथा' शब्द का अभिधान अज्ञातकर्तृक लोकप्रख्यात पद्यों के रूप में किया जाता है। प्राचीन वैदिक एवं लौकिक साहित्य में अनेक अज्ञातकर्तृक पद्य उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के पद्य लोक में समय-समय पर अनेक राजाओं की प्रशस्ति में प्रख्यात थे। ये गाथायें लोगों के कण्ठस्थ रहीं। ऐसी गाथा का प्रयोग भी पुराणसंहिता में हुआ है। इन गाथाओं द्वारा पुराणों में किसी महान् व्यक्ति का जीवनदर्शन एक-दो श्लोकों में भी अभिव्यक्त किया जा सका है। (४) 'कल्पशुद्धि' (या 'कल्पजोक्ति') का यह तात्पर्य है कि भिन्न-भिन्न कल्पों (समय-विशेषों) में होने वाले विषयों या पदार्थों का विवरण प्रस्तुत किया जाय।

पुराणसंहिता के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार करते हुए पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'पुराणविमर्श' में यह उल्लेख किया है कि 'दक्षिण भारत के एक विद्वान् पौराणिक पण्डित नरसिंह स्वामी ने मूल पुराणसंहिता के पुनः प्रणयन की चेष्टा की है। उनकी पद्धति इस प्रकार है—'वे कतिपय पुराणों के तुलनात्मक अध्ययन करने से इस परिणाम पर पहुँचे कि पुराणों में असंख्य श्लोक, कहीं-कहीं तो पूरा अध्याय पुनरुक्त है। वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य तथा हरिवंश—इन पुराणों में ऐसे श्लोकों की पुनरुक्ति बहुत अधिक है। ऐसे सब श्लोकों अथवा अध्यायों की गम्भीर छानबीन करने के अनन्तर उन्होंने इस कल्पना के अनुसार चार पादों में विभक्त 'पुराणसंहिता' के अध्याय, श्लोक तथा विषय की पूरी सूची दी है'[3]। इस संकलन में नरसिंह स्वामी ने केवल ऐतिहासिक विषयों—'पञ्च लक्षणों'—को ही 'पुराणसंहिता' का अविभाज्य अङ्ग माना है। अन्य प्रासङ्गिक विषयों को उन्होंने 'पुराणसंहिता' से पृथक् कर दिया है'। इस सम्बन्ध में आचार्य उपाध्याय ने अपनी

अरुचि प्रकट करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि पुराणों में वर्णित धर्मशास्त्र तथा अन्य प्रासङ्गिक विषयों का समावेश भी रहा होगा। कारण यह है कि 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' में उद्धृत 'भविष्य-पुराण' तथा अन्य पुराणों के बचनों से यह विदित होता है कि उस युग में धर्मशास्त्रीय विषयों का भी समावेश पुराणों के अन्तर्गत रहा। इसके साथ ही 'स्कन्दपुराण' के एक वचन[1] से भी यह सूचित होता है कि 'पञ्चाङ्गों' (पञ्चलक्षणों) से अतिरिक्त यावद् विवेच्य विषय व्यासजी ने आख्यानों के अन्तर्गत समाविष्ट किए हैं।

पुराणों का स्वरूप एवं संख्या

प्राचीनकाल से ही पुराणों की संख्या १८ मानी चली आ रही है। ये अष्टादश पुराण अब भी किसी न किसी रूप में उपलब्ध हैं। 'देवीभागवत' में प्रत्येक पुराण के प्रथम अक्षर के निर्देश द्वारा १८ पुराणों का नाम एक श्लोक में समाविष्ट किया है—

"म-द्वयं भ-द्वयं चैव 'ब्र'-त्रयं 'व'-चतुष्टयम्।
'अनापल्लिङ्गकूस्कानि' पुराणानि पृथक् पृथक्॥"

तदनुसार दो पुराण 'म' से आरम्भ होने वाले—(१) 'मत्स्य' एवं (२) 'मार्कण्डेय; दो पुराण 'भ' से आरम्भ होने वाले—(३) 'भागवत' तथा (४) 'भविष्य'; तीन पुराण 'ब्र' से आरम्भ होने वाले—(५) 'ब्रह्म', (६) 'ब्रह्मवैवर्त' एवं (७) 'ब्रह्माण्ड'; चार पुराण 'व' से आरम्भ होने वाले—(८) 'वामन', (९) 'विष्णु', (१०) 'वायु' एवं (११) 'वाराह'; 'अ' से आरम्भ होने वाला एक पुराण (१२) 'अग्नि'; 'ना' से आरम्भ होने वाला एक—(१३) नारद; 'पद्' से आरम्भ होने वाला एक—(१४) 'पद्म'; 'लिङ्ग' से आरम्भ होने वाला (१५) 'लिङ्ग' नामक; 'ग' से आरम्भ होने वाला एक—(१६) 'गरुड'; 'कू' से आरम्भ होने वाला (१७) कूर्म, तथा 'स्क' से आरम्भ होने वाला—(१८) 'स्कन्द' नाम से विख्यात हैं।

विषयानुक्रमणिका

धात्रीश शिव ३२१, दुर्गतिहारिणी दुर्गा, रिष्टवती-संगम, रिष्टक देव, दुर्गा-सङ्गम, गोमती-सरयू-मध्यवर्ती नीलपर्वत ३२२, सूर्य-अग्नि-तीर्थ, 'क्षेत्रराज' की विशेषता ३२३, चण्डीश का उत्तर वाराणसी बनाने के लिये भेजा जाना ३२४, गोमती-सरयू-संगम-मध्य उत्तर वाराणसी की रचना का शुभारम्भ ३२५, आकाशवाणी, शिवलिङ्ग दर्शन ३२६, गालबाख्यान, जानपद-गालव-संवाद ३२७–३२८, बागीश्वर दर्शन ३२९, सनत्कुमारगाथा, नीलपर्वत पर मार्कण्डेय का शुभागमन ३३१, वसिष्ठ द्वारा शिव की स्तुति ३३२, पार्वती का गोरूप एवं शिव का सिंहरूप-धारण, सरयू का प्रकट होना, व्याघ्रेश्वर नाम का कारण ३३३, मार्कण्डेय-शिला ३३४, विष्णु द्वारा सरयू की प्रशस्ति, 'शिवनाभि' के रूप में वागीश, वागीश-माहात्म्य ३३५, आग्नीध्राख्यान ३३६, दुर्वासा द्वारा वर्णित पापनाशक उपाय ३३६–३३८, प्रासङ्गिक सुबलाख्यान ३३८, दुर्वासा के द्वारा वागीश्वर की महिमा ३४०–३४१, प्रवेश-निर्गम मार्ग—'वरुणा' के मध्य वह्नितीर्थ, प्रजापति-पूजन, बाणह्रद, शमद-तीर्थ, ईशानदेव, गोदावरी-कालिन्दी-संगम, पापप्रणाशन तीर्थ, चन्द्रोदयी देवी, वागीश्वर तीर्थ, रुद्रकुण्ड, पुराणतीर्थ, ऋणमोचन तीर्थ, भूकुण्ड, चक्रतीर्थ, चन्द्रभागा-सङ्गम, चन्द्रेश्वर, शेषभागासङ्गम, शेखरेश्वर ३४२, गुञ्जन ह्रद, बिन्दुमाधव, भागीरथी, सेतुबन्धेश्वर, ध्रुवक्षेत्र-ध्रुवेश्वर, कर्णाटक क्षेत्र, रामतीर्थ, पुष्कर क्षेत्र, सुरभीसङ्गम—सुरभी देवी, नन्दासङ्गम, कर्णमाटीश्वर, चन्द्रेश्वर, त्रिविक्रम, अत्रि-तीर्थ, कुबेरतीर्थ ३४३, कपालतीर्थ, सूर्यकुण्ड, वाणक्य तीर्थ-वाणक शिव, काश्यप-काश्यपी, अविमुक्ततीर्थ—अविमुक्तेश्वर, हंसतीर्थ, रुद्रतीर्थ, रुद्रद्वार तीर्थ, नन्दिरुद्र, महाकाल, क्षेत्रपाल, काली-कपाली, जह्नुजा, सावित्री, शारदा ३४३, ब्रह्मतीर्थ, शेषतीर्थ, प्रभासतीर्थ, कनखलतीर्थ, सर्वपापप्रमोचन तीर्थ, विमलतीर्थ, हरितीर्थ, विश्वनाथतीर्थ, विश्वनाथपूजन, विद्याधर क्षेत्र—सङ्गमतीर्थ, मार्कण्डेयशिला, त्रिवेणी-महादण्डक्षेत्र, वागीश्वर अन्तर्गृह पूजा प्रकार ३४५–३४६, स्तुति ३४६, नीलकण्ठ-पूजन, फलश्रुति ३४७, गालव द्वारा क्षेत्रप्रशस्ति ३४७, व्यास द्वारा प्रशस्ति ३४८–३४९, वामेश्वर, इन्दुतीर्थ, सत्यक पर्वत, ब्रह्मा, नारदह्रद, ब्रह्म-नारद तीर्थ ३५०, पल्वलगतीर्थ, वह्नितीर्थ, अग्निपर्वत, अग्नितीर्थ, अग्निवती नदी, कालीय ह्रद, गणिकासङ्गम—गणेश्वर, ताला नदी ३५१, निषधा-सङ्गम, कोकिला-सङ्गम, सुग्रीवतीर्थ, भद्रा—भद्रेश्वर ३५२, वागीशक्षेत्र-सीमा ३५३ ।

उनासीवाँ अध्याय **भद्रा-माहात्म्य** ३५३–३५५

ऋषियों द्वारा नाग-यज्ञ-जिज्ञासा ३५३, वेदव्यास द्वारा उत्तरगिरिवासी नागों को नागपुर का ब्रह्मा द्वारा आवण्टन ३५३, नागपुर (नाकुरी) की स्थिति ('जोहार' के पश्चिम की ओर), 'नाग' शिवपूजक ३५४, मूलनारायण द्वारा जलानयन की प्रार्थना ३५४, फेनिल द्वारा परामृष्ट नागों से की गई गङ्गा की प्रार्थना, 'भद्रा' का आविर्भाव ३५५ ।

अस्सीवाँ अध्याय **गोपीश्वर-माहात्म्य** ३५६–३६०

गोपीवन की स्थिति, गोपीश्वर महादेव ३५६, नागों द्वारा कामधेनु की सेवा ३५७,

एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय वैध्यपर्वत-माहात्म्य ६११

कैलास क्षेत्र, केदार, केदारी, लोकपर्वत की स्थिति, लवङ्गा तथा शाङ्करी-पूजन।

एक सौ सत्तरवाँ अध्याय काकाद्रि-माहात्म्य ६१२

कर्णाली-मध्यगत काकाद्रि, काकेश्वरी देवी, क्रान्तक्रान्तेश्वर ६१२।

एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय मालिका-माहात्म्य ६१२–६१३

मालिका की स्थिति, पञ्चपुर, पर्वतरूप में देवी का वास, देवीमाहात्म्य ६१२-६१३।

एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय मालिका-माहात्म्य ६१४–६२८

मालिका के सम्बन्ध में ऋषियों की जिज्ञासा, व्यास द्वारा समाधान, देवतट तथा पुरपर्वत की स्थिति, पञ्चपुर-पर्वत, शिखर पर मालिका, भगवती का अधिक प्रिय क्षेत्र, मालिका का प्रभाव ६१५, शालिहोत्राख्यान, सुमति-ब्राह्मण-संवाद, वेदनिधि-सुमति-संवाद, ऋषिद्वारा वेदनिधि को बताया गया उपाय ६१६-६२१, ऋषिद्वारा मार्गनिर्देश, स्थान-माहात्म्य, मालिका की विविध प्रकार से पूजा करने का फल ६२१, महेन्द्रपुर, महेन्द्रसर, भूकुण्ड, मालिका के विविध रूप, राक्षसपुर, वेणुक्षीरा-सङ्गम, शतरुद्र, रुद्रकुण्ड, वसुधारा, गुहास्थ-महेश्वरी ६२२, विष्णुतीर्थ, वृद्धकन्दरा, ब्रह्मसर, क्रौञ्ची देवी, नागेश्वरी, देवतट पर्वत, क्षीरस्थल, दीपस्थल, वेदनिधि द्वारा सर्वविध-राशि-सम्बन्धी जिज्ञासा ६२३, मुनिद्वारा समाधान, सती का देहत्याग तथा हिमालय में जन्म लेना ६२४, पञ्चपुरी की विशेषता, यज्ञ किया जाना, देवी की प्रसन्नता के लिये सर्वविध राशि-संकलन, वेदनिधि का वहाँ पहुँचकर पिता का उद्धार करना ६२६, देवी का दर्शन कर पिता के हत्यारों का वेदनिधि द्वारा वध किया जाना ६२७, फलश्रुति ६२८।

एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय लङ्कासर-माहात्म्य ६२८–६२९

'शारदा' नदी का उद्गम, रावणह्रद, लाङ्गलि, शूलगुहा, रावणेश्वर ६२८-६२९।

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय शारदावर्णन ६३०

विभीषण-ह्रद, विभीषणेश्वर, शाकुन्तलेश्वर, बिन्दुसर शाकुन्तलसर, लङ्का-मानस-मध्य २६ ह्रद ६३३।

एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय खेचरपुरी-माहात्म्य ६३४–६३७

चक्रतीर्थ, चक्रेश्वर, दत्तात्रेय-ह्रद, कुमुद्वती नदी, पञ्चपुर पर्वतस्थ ३३ हजार गुफायें, पम्पा-शारदा-संगम, कर्णाली-शारदा-संगम ६३१, [1]मुरु, मुरल, हूण, गौरी-

---

१. श्रीमद्भागवत में पाँच सिरों वाले एक दैत्य का नाम 'मुर' बताया है। वह शङ्खासुर का पुत्र था। उसे श्रीकृष्ण ने मारा था, अतः श्रीकृष्ण (विष्णु)

उद्दालक द्वारा वर्णित माहात्म्य का व्यास द्वारा कहा जाना, पुरुषोत्तम का आगमन, उद्दालक द्वारा विष्णु का स्तवन ६५२, विष्णु द्वारा शिव की प्रशंसा ६५३, 'दाडिम' पर्वत से पूर्व की ओर 'विष्कम्भ' पर्वत (मेरु की तरह), उसकी अधित्यका के पूर्व भाग में 'छायाक्षेत्र' ६५४, छायाक्षेत्रेश्वर, छायाक्षेत्र की विशेषता ६५५, सुबलाश्व-आख्यान, शिवयोगी का वध ६५६, छायाक्षेत्रेश्वर-पूजा, तीन कुण्डों में स्नान करने का आदेश, मुद्गल के आश्रम में राजा का प्रवेश, विष्कम्भ-पर्वत से छायाक्षेत्रेश्वर का दर्शन तथा पापमुक्ति ६५७, फलश्रुति ६५८, उद्दालक का छायाक्षेत्र में आगमन, तपोवास-वर्णन, यज्ञारम्भ, मानसखण्ड[1] की सार्थकता, मानसखण्ड कथाश्रवण-फल ६६० ।

परिशिष्ट-सूची

---

१. समग्र 'मानसखण्ड' का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि ग्रन्थकार ने हिमाद्रिस्थ 'मानसखण्ड' (इस नाम से विख्यात भूखण्ड) को एक पृथक् स्वतन्त्र अन्विति ('वर्ष' या 'खण्ड') के रूप में मान कर इसका नव खण्डात्मक विभाग किया है। वह विभाग इस ग्रन्थ के पाँचवें अध्याय में दिखाया है। तदनुसार उन नौ खण्डों के नाम ये हैं—(१) समष्टिरूप में हिमाद्रि-खण्ड (हिमाद्रि के अन्तर्गत 'पञ्चचूली' का वर्णन है), (२) मानस तथा मानसोत्तरखण्ड (मानसरोवर तथा उसके उत्तर भाग का वैशिष्ट्य-निरूपण), (३) कैलास-खण्ड (कैलास पर्वत), (४) केदारखण्ड (इसी नाम से विदित है)। इसके अतिरिक्त 'स्थाकिल' पर्वत वर्णन-प्रसङ्ग में (अध्याय १३३ तथा १३७) 'स्थल-केदार' को भी केदार के रूप में प्रस्तुत किया है (५) पातालखण्ड (सुप्रसिद्ध 'पातालभुवनेश्वर'), (६) काशीखण्ड (उत्तर वाराणसी के रूप में बागेश्वर), (७) रेवा-खण्ड (इस नाम की नदी का वर्णन 'शतलिङ्ग' आदि स्थलों में लिङ्ग बाहुल्य है।) इसके पास रामेश्वर का वर्णन होने से यह स्थान रामगङ्गा-सरयू-संगमस्थ क्षेत्र हो सकता है), (८) ब्रह्मोत्तरखण्ड ('गोकर्ण' से सम्बद्ध स्थान), तथा (९) नागर-खण्ड ('खेचर'-पर्वत, क्योंकि उस स्थल में आन्तरिक्ष-गत-ग्रहों नक्षत्रों का आख्यान है)। सहस्रेश्वर शिव भी हैं। अटकिन्सन ने केवल आरम्भ के पाँच खण्डों को पर्वतों से सम्बद्ध मानने की बात कही है।

पृथक् अन्विति मानने के कारण इस खण्ड के मङ्गलाचरण में वर्णित 'मेरु' को 'हेमकूट' मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। कारण यह है कि 'हेमकूट' की स्थिति 'किम्पुरुषवर्ष' और 'भारतवर्ष' की सीमा पर 'हिमालय' (हिमाद्रि) के उत्तर में मानी गई है। महाभारत के अनुसार अर्जुन ने अपनी सेना का शिविर डाला था और वहाँ से वह हरिवर्ष में गए थे। अन्यत्र भी 'हेमकूट' को नन्दा' नदी के तट पर एक दुर्गम पर्वत के रूप में बताया गया है। राजा युधिष्ठिर भी यहाँ तीर्थ-यात्रार्थ आए थे। इसे ऋक्षकूट भी कहते हैं (भागवत ५-१६-२६)। मङ्गलाचरण-श्लोक में 'मेरु' का विशेषण 'कनकमय' दिया गया है। 'हेमकूट' नाम से उसकी सङ्गति बैठ जाती है। कालिदास ने भी विशेषतया 'हेमकूट' का वर्णन किया है।

प्रकृत ग्रन्थ के १४०वें अध्याय में 'शृङ्गाल' पर्वत का उल्लेख हुआ है। महाभारत में एक स्त्री राज्य के स्वामी का नाम 'शृङ्गाल' कहा गया है। शृङ्गाल-पर्वत की स्थिति 'मेरु' के दक्षिण-भाग में कही गई है। कदाचित् युआन-च्वांग द्वारा वर्णित स्त्री-राज्य का संकेत इससे मिल सकेगा।

स्कन्दपुराणान्तर्गतः

मानसखण्डः[1]

१

ये देवाः सन्ति मेरौ वरकनकमये मन्दरे ये च यक्षाः[2],
पाताले ये भुजङ्गाः फणिमणिकिरणध्वस्तसर्वान्धकाराः।
कैलासे स्त्रीविलासाः प्रमुदितहृदया ये च विद्याधराद्या-
स्ते मोक्षद्वारभूतं मुनिवरवचनं श्रोतुमायान्तु सर्वे ॥ १ ॥
रुद्राख्यानमिदं पवित्रमतुलं श्रीमन्मृडान्यान्वितं,
कृष्णस्यामितविक्रमस्य च यशः शृण्वन्तु धन्या जनाः।
देवानां भुवि वासिनामपि तथा तीर्थान्वितास्थापनम्,
श्रुत्वा ब्रह्मपदं प्रयान्ति विमलं संसेवितं योगिभिः ॥ २ ॥

॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥

कैलासं रूपमास्थाय राजते परमेश्वरः। तमहं शंकरं वन्दे स्थाणुरूपं हिमात्मकम् ॥१॥
'मानसे' प्रतिबिम्बं च पततीह दिवानिशम्। सोऽयं सदाशिवः साक्षान्मानसे रमतां सदा ॥२॥

सुवर्णमय मेरुपर्वतवासी देवगण, मन्दराचलवासी यक्ष, फणस्थ मणिकिरणों द्वारा समग्र अन्धेकार को दूर करने वाले पातालवासी नागगण, स्त्रियों के साथ विलास-प्रिय कैलासवासी विद्याधर आदि (सभी लोग) मोक्षद्वारस्वरूप मुनिश्रेष्ठ (वेदव्यास) की वाणी को सुनने के लिए आयें। माता-पार्वती-सहित भगवान् शंकर के इस पवित्र आख्यान को तथा अमित पराक्रमी भगवान् कृष्ण की यशोगाथा को पुण्यात्मा लोग श्रवण करें। ऐसे पुण्यात्मा भूलोकस्थ देवताओं तथा तीर्थों के प्रतिष्ठापित होने की कथा को सुन कर योगियों से सेवित विशुद्ध ब्रह्मपद को प्राप्त करते हैं। ऐश्वर्यशाली विष्णु-स्वरूप योगेश्वर

---

१. (क) देवीभागवतमाहात्म्यं 'मानसखण्डाद्' उद्धृतमिति तत्र पञ्चस्वध्यायेषु पुष्पिकायां वर्णितम्।
(ख) स्कन्दपुराणान्तर्गते केदारखण्डे मानसखण्डस्योल्लेखः वर्तते। तथा हि—
'श्रुत्वा वै मानसे खण्डे तीर्थानि सुबहून्यपि। देवागाराणि बहुशः कथाश्च मुनिसत्तमाः' ॥
नारद उवाच—'देव षण्मुख देवेश पार्वतीसुतनायक। मानसादिषु क्षेत्रेषु तीर्थानि प्रवराणि मे।
कथितानि महासेन भवमुक्तिप्रदानि हि' ॥ के० ख० अ० १०१।११-१३
हिमालयस्य खण्डपञ्चात्मको विभागोऽपि केदारखण्डे दर्शितः। तथा च तत्रोक्तम्—
'तीर्थानि प्रवराण्येव ह्येताख्ये पर्वतोत्तमे। अग्रे मानसप्रस्तावे तथा नेपालके मुने ॥
काश्मीरे चैव प्रस्तावे, जालन्ध्रे वै तथा पुनः। तथा केदार-प्रस्तावे कथितानि मयाऽद्य ते' ॥
के० ख० अ० २०४।५६-५७ ॥

२. क्वचित् 'वृक्षाः' इति पाठः। श्लोकेऽस्मिन् देव-नाग-विद्याधरादि-योनिविशेषवर्णनेन 'यक्षाः' इत्येव पाठः समीचीनः। यतो मन्दराचले यक्षाणां वसतिरत्र परिकल्पिता।

नमस्कृत्वा[1] महाभागं कृष्णं योगेश्वरं हरिम् । धातारमृषिभिर्युक्तं शिवं देव्या समन्वितम् ॥३॥
जनमेजयो महाप्राज्ञः कुरूणां कीर्तिवर्धनः । श्रुत्वेतिहासयुक्तानि पुण्यानि चरितानि च ॥४॥
कृष्णस्यामितवीर्यस्य शिवस्य पद्मजस्य च । पप्रच्छ सूतं धर्मात्मा शास्त्रतत्त्वार्थकोविदम् ॥५॥

जनमेजय उवाच—

ऋषे ! सुमहदाख्यानं त्वया सर्वं प्रकीर्तितम् । पुराणानां च सर्वेषां मतं सर्वमुदाहृतम् ॥६॥
व्रतानां च फलं पुण्यं तीर्थस्नानफलं तथा । देवानां दानवानां च गन्धर्वाप्सरसामपि ॥७॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि त्वयोक्तानि द्विजोत्तम । न तु भूमौ स्थितानां हि तीर्थानां सम्भवं मुने ॥८॥
धरायाः सम्भवं चापि स्थितिं वाऽपि तपोधन । अधुना श्रोतुमिच्छामि कथयस्व कृपानिधे ॥९॥

सूत उवाच—

ऋषिभिश्चापि यः पृष्टो नैमिषारण्यवासिभिः । द्वैपायनो महाभागस्तदहं कथयामि ते ॥१०॥
वसिष्ठो भगवानत्रिर्दुर्वासाश्च तथाङ्गिराः । मनुः पुलस्त्यः पुलहो रैभ्यो द्रोणकृपादयः ॥११॥
राजर्षयोऽपि राजेन्द्र ! देवाः सिद्धगणास्तथा । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसुतं कविम्[2] ॥१२॥

श्रीकृष्ण, ऋषियों के सहित ब्रह्मा एवं पार्वती से युक्त शिव को प्रणाम कर कुरु-वंश के यश को बढ़ाने वाले धर्मात्मा एवं विद्वान् राजा जनमेजय ने अतुलपराक्रमी भगवान् कृष्ण, शिव तथा ब्रह्मा के इतिहास-युक्त पुण्य (पावन) चरित्रों को सुन कर शास्त्र-मर्मज्ञ महर्षि सूत से इस प्रकार जिज्ञासा की ॥ १-५ ॥

जनमेजय ने कहा—ऋषिवर, आपने सम्पूर्ण विशद कथा सुनाई है, सब पुराणों का मत भी प्रतिपादित किया है, (इसके साथ ही) व्रतों का पुण्यफल, तीर्थों में स्नान करने का फल तथा देव, दानव, गन्धर्व एवम् अप्सराओं के आश्चर्यजनक कार्यकलाप भी, हे विप्रवर, आपने वर्णित किये हैं; किन्तु पृथिवी के तीर्थों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आपने (कुछ) नहीं कहा। (अतः) हे तपोधन ! अब मैं पृथिवी की उत्पत्ति तथा उसकी स्थिति के बारे में सुनना चाहता हूँ। कृपानिधे ! आप (इस विषय में) कहें ॥६-७-८-९ ॥

सूत बोले—नैमिषारण्यवासी ऋषियों ने महामान्य वेदव्यास (द्वैपायन) से जिस प्रकार पूछा, उसे मैं आप से कहता हूँ। वसिष्ठ, अत्रि, दुर्वासा, अङ्गिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, रैभ्य, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य प्रभृति महर्षिगण, अनेक राजर्षि, इन्द्रप्रमुख देवगण तथा सिद्धगण—ये सब लोग शास्त्रों के तत्त्वज्ञ पराशर के पुत्र कविश्रेष्ठ द्वैपायन (वेदव्यास)

---

१. पुराणेषु प्रायशो ल्यप्-प्रत्ययान्तरहितः पाठो दृश्यते ।
२. व्यासस्य कवीन्द्रत्वं ब्रह्माण्डपुराणे वर्णितम् । तथा हि—
'व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकं यदा । मौनीभूतः स सस्मार त्वामेव जगदम्बिकाम् ॥
तदा चकार सिद्धान्तं त्वद्वरेण मुनीश्वरः । संप्राप निर्मलं ज्ञानं भ्रमान्धध्वंसदीपकम् ॥
पुराणसूत्रं श्रुत्वा स व्यासः पद्मकलोद्भवः । त्वां सिषेवे प्रदध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे ॥
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो बभूव ह । तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार ह' ॥
ब्र० वै० प्रकृतिखण्ड अध्याय-४ ।

ततः स राक्षसो घोरो मनुष्याणां नरेश्वर । चकार कदनं घोरं[1] तथाऽन्यैं राक्षसैः सह ॥३१॥
कदाचिद्विन्ध्यपादाग्रे कदाचिन्मलये गिरौ । कदाचिद्विपिने घोरे कदाचिन्नगरे प्रभो ॥३२॥
जघान मानुषान् सर्वान् घण्टाकर्णेति[2] विश्रुतः । अवध्यो मानुषाणां हि बभूव नृपसत्तम ॥३३॥
हयान् गजान्मनुष्यांश्च सूकरान्महिषानपि । जघान राक्षसो घोरो विकटैं राक्षसैः सह ॥३४॥
ब्राह्मणान् क्षत्रियान्वैश्यांस्तथान्यान्शूद्रनायकान् । शुनाद्यान् श्वापदाद्यांश्च जघान ब्रह्मराक्षसः॥
ततः स राक्षसो घोरो वसुधां विन्ध्यमध्यगाम् । चकार जनहीनां वै तथा मलयमध्यगाम्[3] ॥३६॥
श्वापदैर्मर्कटैश्चापि सिंहाद्यैश्च मृगैरपि[4] । चकार हीनां वसुधां राक्षसो घोरशंनः ॥३७॥
ततः कालेन महता ऋषिमेकं ददर्श सः । तपस्यन्तं महात्मानम् ऋषिपत्न्या सह प्रभो ॥३८॥
ध्यायन्तं मानसं क्षेत्रं क्षेत्राणां नायकं शुभम् । पत्न्यग्रे भाषमाणं तं सरोवरकथां शुभाम्॥३९॥
ददर्श राक्षसो घोरो राक्षसैः सह नरेश्वर । एनं हन्मीति संचिन्त्य राक्षसो राक्षसैः सह ॥४०॥
जगाम तत्र राजर्षे यत्र वै स ऋषिः स्थितः । तत्र गत्वा ऋषेर्वाणीं मानसाख्यकथान्विताम्॥४१॥
पत्न्यग्रे कथ्यमानां स शुश्राव ब्रह्मराक्षसः । ततः स राक्षसो घोरो त्यक्त्वा हिंसां दुराशयाम् ॥
जगाम स ऋषेरग्रे राक्षसैः सह नरेश्वर । तत्र गत्वा स राजर्षे सरोवरकथां शुभाम् ॥४३॥

तब वह पापी राक्षस अन्य राक्षसो के साथ मलयाचल पर्वत पर रहने लगा। फिर वह दुराचारी राक्षस अन्य राक्षसों के साथ मानव-संहार करता रहा। कभी विन्ध्याचल के पास, कभी मलयाचल में, कभी नगर में नर-संहार करते हुए वह 'घण्टाकर्ण' नाम से प्रसिद्ध हो गया। राजन् ! वह मनुष्यो में अवध्य हो गया। फिर तो वह विकट राक्षसो के साथ हाथी, घोड़े, मनुष्य, सूअर तथा भैंसो को मारने लगा। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा कुत्तों आदि पशुओं को भी उस ब्रह्मराक्षस ने मार डाला। इस तरह उस दुष्ट राक्षस ने विन्ध्य तथा मलयाचल के मध्य में स्थित प्रदेश को निर्जन बना दिया। यहाँ तक वह क्षेत्र पशुओ, बन्दरो, मृगों तथा सिंहों से भी विरहित हो गया। चिरकाल के बाद उसने एक तपस्वी महात्मा को अपनी पत्नी-सहित तपस्या करते हुए देखा। वह महात्मा सब क्षेत्रो में श्रेष्ठ मानस-क्षेत्र का ध्यान करते हुए मानसरोवर की शुभप्रद कथा सुना रहे थे। राजर्षे ! उस महात्मा को देखकर अन्य राक्षसो के साथ उन्हें मारने के विचार से वह उनके पास गया। अपनी पत्नी को मानस का आख्यान सुनाते हुए ऋषि को उसने वहाँ देखा तथा उनकी वाणी सुनी। उसे सुनकर उसने उन्हें मारने का विचार छोड़ दिया। राक्षसों सहित उनके समक्ष जाकर उसने महात्मा से

---

१. 'घोरैः' इति 'ख' पुस्तके।

२. (क) शंकर के एक अनुचर का नाम जो मेधा के गर्भ से उत्पन्न मंगल का पुत्र था। शापवश यह उज्जैन में उत्पन्न हुआ था। इसने शिव के नाम के बिना ही बड़े छन्दों में शिव-स्तुति की रचना की थी। प्रसन्न होकर शिव ने इसे शाप-मुक्त किया।—शिवपुराण। (ख) हरिवंश में भी इस नाम का उल्लेख मिलता है। यह विष्णुद्वेषी था। श्रीकृष्ण के साथ बदरिकाश्रम गया और शिव के आदेशानुसार विष्णु-भक्त हो गया। (ग) एक गणेश्वर (मत्स्य पु० १८३।६५)।

३. 'चकार हीनां वसुधां राक्षसो घोरदर्शनः' इति 'ख' पुस्तके।

४. इयं पङ्क्तिः 'ख' पुस्तके न वर्तते।

पूजितां देवगन्धर्वैः शुश्राव ब्रह्मराक्षसः । धर्माख्यानसमायुक्तां तथा शिवगुणान्विताम् ॥४४॥
सरोवरकथां पुण्यां शुश्राव ब्रह्मराक्षसः । ततस्तं पूजयामास ऋषिं पत्न्या[1] समन्वितम् ॥४५॥
स घोरो राक्षसो राजञ्ज्ञात्वा ज्ञानपदं[2] महत् । धर्माख्याञ्च संश्रुत्वा ज्ञात्वा पापान्स्वकार्जितान्[3]।
रुरोद सुस्वरं राजन् स घोरो ब्रह्मराक्षसः । पप्रच्छ च ऋषिं तं वै पापानां निष्कृतिं प्रभो ॥
कथं शुद्धिमवाप्स्यामि संचिन्त्येति स राक्षसः ॥ ४७ ॥

राक्षस उवाच—

पापात्मनां महत्पापं शाम्येत[4] केन वै ऋषे ॥ ४८ ॥
संसारसागरं केन तीर्यते कथयस्व माम् । जन्मान्तरकृतं पापं ब्रह्महत्यादिकं तथा ॥४९॥
परस्वहरणं ब्रह्मन् ब्राह्मणीगमनादिकम् । पातकं केन वै ब्रह्मन् नश्येत कथयस्व माम् ॥५०॥
त्वामहं हन्तुमायातः सह तै[5] राक्षसैर्मुने । श्रुत्वा पुण्यां सरकथां त्वन्मुखान्निःसृतां शुभाम् ॥५१॥
हिंसा मे चाद्य निष्क्रान्ता पापमार्गप्रदर्शनी । श्रुत्वा धर्मपथं त्वत्तो गतोऽस्मि ज्ञानसागरम् ॥५२॥
[6]अहं पापमतिः पापो ब्रह्महा राक्षसाधमः । क्व ज्ञानदर्शिनो पुण्या कथा वै समुदाहृता ॥५३॥
श्रुत्वा हिंसां परित्यज्य त्वामहं पर्युपस्थितः । लोकोपकरणार्थं हि भवद्भिः क्रियते तपः॥५४॥
नान्तं पश्याम्यहं ब्रह्मन्पातकानां प्रणाशिनाम् । जन्मद्वयार्जितानां च मया पापात्मनाऽपि हि[7]॥

भगवान् शंकर की महत्ता से समन्वित उस धर्माख्यान को पूछकर उसे सुनने लगा । सरोवर की शुभदायिनी कथा को सुनकर उसने सपत्नीक ऋषि का पूजन किया । (इस प्रकार) उस भयानक राक्षस ने ज्ञान प्राप्त किया तथा उस धर्माख्यान के श्रवण करने से अपने पापों को जान लिया । वह महात्मा के समक्ष जोर से रोने लगा और अपने पापों का निराकरण करने के सम्बन्ध में उनसे उपाय पूछने लगा ॥ १-४७ ॥

राक्षस बोला—ऋषिप्रवर ! पापात्माओं के पापों का शमन कैसे सम्भव है ? संसार-सागर को कैसे पार किया जा सकता है ? दूसरे जन्मों में किये हुए पाप, ब्रह्महत्या, पर-द्रव्य-हरण आदि पापों को किस प्रकार निरस्त किया जाय ? ब्रह्मर्षे ! आप कृपया इनके लिये उपाय बतलायें । मैं तो इन राक्षसों के साथ आपको मारने के लिये उद्यत रहा । किन्तु आपकी वाणी से मुखरित सरोवर की शुभ कथा सुनकर पापमार्ग को दिखाने वाली मेरी हिंसावृत्ति दूर हो गई है । आप से धर्ममार्ग का श्रवण कर मैं ज्ञानसागर में पहुँच गया हूँ । कहाँ मैं पापबुद्धि ब्रह्महत्या करने वाला राक्षसाधम ? कहाँ यह ज्ञानप्रद पुण्यदायिनी कथा ? इसे सुन कर मैं हिंसा का त्याग कर आपके समक्ष खड़ा हुआ हूँ । आपने लोकोपकार के लिये ही तप किया है । हे ब्रह्मन्, (तथापि) मैं अपने विनाशक दो जन्मों में किये हुए पापों का अन्त नहीं देख पा रहा हूँ ॥ ४८-५५ ॥

---

१. 'ऋषिपत्न्या समन्वितम्' इति 'क' पुस्तके ।
२. 'ज्ञानपथम्' इति 'ख' पुस्तके ।
३. 'पापानुपार्जितान्' इति 'ख' पुस्तके ।
४. 'शाम्यति' इति 'क' पुस्तके ।
५. 'सहैतै' इति 'क' पुस्तके ।
६. 'क्वाहं पापमतिः पापः' इति 'ख' पुस्तके ।
७. 'पापात्मनाऽपि ह' इति 'ख' पुस्तके ।

नारद उवाच—

बको मत्स्याशनाद् ब्रह्मन् कथं शिवपुरं गतः। विभाण्डेशं कथं प्राप्तः कथं सन्दृष्टवान् पुरा[1]।

ब्रह्मोवाच—

बकः कश्चिद् महाभाग बभूव हिमपर्वते। मत्स्याशनेन दिवसान् निनायाज्ञानकातरः॥२६॥
सुरभीसरितोर्मध्ये हत्वा मत्स्यान् महाबकः। विभाण्डेशस्य शिरसि स्थापयित्वा चखाद ह॥
एवं हि कतिचित्कालं कुर्वतस्तस्य[2] दुरात्मनः। जगाम सुमहान् कालो[3] हत्वा मत्स्यान् दिने दिने॥
ततः कालेन महता तत्रैव स बकाधमः। पञ्चत्वमगमद् ब्रह्मन् तत्रैव सुरभीतटे॥२९॥
नीतो याम्यैर्यमपुरं ददृशुः शिवकिङ्कराः॥ ३०॥
प्रत्यानेतुं शिवपुरं ययुर्याम्यान् प्रति द्विज। ऊचुस्ते तान् महाभाग त्यजन्तु बकनायकम्॥३१॥
नीयतेऽस्माभिर्देवस्य लोके देवर्षिसेविते। प्रत्यूचुर्यमदूतास्ते तान् वै शङ्करवल्लभान्॥३२॥

यमदूता ऊचुः—

न त्यजामो महाभागाः पापं मत्स्याशिनं बकम्। धर्ममार्गविहीनं वै पापमार्गरतं जडम्॥३३॥
नानेनेष्टादिपूर्तं वै नानेनाराधितो हरः। नानेन सरितां श्रेष्ठा स्नाता भागीरथी शुभा॥३४॥
कथमस्य महाभागा वासः शिवपुरे भवेत्। यमलोके बकस्यास्य वासो धात्रा विकल्पितः॥३५॥

हे पुत्र ! अज्ञानवश पाप करने वाले व्यक्ति भी मत्स्यभक्षी बगुले की तरह स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं॥ ११-२४॥

(बीच ही में) नारदजी ने पुनः जिज्ञासा की—ब्रह्मन् ! मत्स्यभक्षी बगुला किस प्रकार शिवलोक पहुँचा ? वह विभाण्डेश के समीप किस तरह गया ? शिवलोक में वह कैसे स्थित रहा ?॥ २५॥

ब्रह्माजी ने फिर कहा—महाभाग ! कोई मूर्ख बगुला हिमालय पर्वत पर रहता था। वह सुरभी और नन्दिनी में मछलियों को मार कर विभाण्डेश के मस्तक पर रख उन्हें खाते हुए दिन बिताता था। इस प्रकार उसका बहुत समय बीत गया। कुछ समय के बाद वहीं सुरभी के तट पर उसकी मृत्यु हो गई और यमदूत उसे यमपुर ले चले। इस दृश्य को शिवदूतों ने देखा कि यमदूत उसे पाशों से बाँधकर यमलोक ले जा रहे हैं। हे महाभाग ! इस प्रकार देखते हुए शिवदूतों ने यमदूतों सेउसश्रेष्ठ बगुले को वापस देने के लिए कहा। यह भी बतलाया कि हम इस श्रेष्ठ बगुले को देव और ऋषियों से सेवित शिवलोक में ले जायेंगे। तब यमदूत शिवदूतों से कहने लगे॥ २६-३२॥

यमदूत बोले—हे शिवदूतों ! हम इस मत्स्यभोगी पापी को नहीं छोड़ेंगे। यह धर्ममार्ग रहित, जड़ तथा दुष्कर्म में लगा रहा है। इसने यज्ञ तथा पूर्त कर्म (कूप आदि का निर्माण) नहीं किए हैं। न तो इसने शिव की आराधना की और न भागीरथी आदि नदियों में स्नान ही किया। तब इस बगुले को ब्रह्माजी ने शिवलोक में रहने का अधिकारी कैसे बनाया है ?

---

१. 'संस्पृष्टवान् पुरा' इति 'क'। २. 'कुर्वतोऽस्य दुरात्मना' इति समीचीनः पाठः।
३. 'जगाम मुनिशार्दूल' इति सर्वत्र।

ब्रह्मोवाच—

तच्छ्रुत्वा यमदूतानां वचनं शिवकिङ्कराः । प्रत्युचुस्तान् महाभाग शक्तिशूलधरा हि ते ।३६।
नास्य पुण्यतमं[1] दूता भवद्भिर्ज्ञायते क्वचित् । गोघ्न-ब्रह्मघ्न-बालघ्ना[2] येन संशुध्यते क्षणात् ॥
तन्मतं भवतां दूता न ज्ञातं सत्यमेव हि । कथं न ज्ञायते दूता विभाण्डेशस्य पूजनम् ॥
यं समर्प्य महामत्स्याः खादितानेन चारुणा[3] ॥ ३९ ॥
इत्युक्ता यमदूतैस्तं बकं संमोच्य किङ्कराः । नीत्वा यावच्छिवपुरं गन्तुं ते परिरेभिरे ॥४०॥
तावद्याम्याः शिवगणानूचुर्वै मुनिसत्तम ॥ ४१ ॥
अहत्वाऽस्मान् महाभागा बको नेतुं न शक्यथ । विजित्याऽस्मान् शिवपुरं बकः सन्नीयतां गणाः ॥
इत्युक्त्वा यमदूतास्ते शक्तिशूलपरश्वधैः । युयुधुः शरसंघैश्च[4] ततः शिवगणैः सह ॥४३॥
तेषां सुतुमुलं युद्धं बभूव मुनिसत्तम । नानाप्रहरणोदग्रं भीरूणां मयवर्धनम् ॥४४॥
ततो याम्या महाभागाः क्षीणप्रहरणायुधाः । जिताः शिवगणैः सर्वे ययुर्यमपुरं प्रति ॥४५॥
जित्वा याम्यान्महाभाग ततस्ते शिवकिङ्कराः । अधिरोप्य विमानाग्रे बकं वै द्विजसत्तम ॥४६॥
नीत्वा शिवपुरं पुण्यं ययुः सर्वे समाहिताः । याम्यापि[5] मुनिशार्दूल रोदमाना मुहुर्मुहुः ॥४७॥
यमं विज्ञापयामासुः शिवकिङ्करचेष्टितम् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा धर्मराजो महामनाः ॥४८॥
चित्रगुप्तं समाहूय बककर्मविनिर्णयम्[6] । न किञ्चिद् दृष्टवान् तस्य सुकृतं मुनिसत्तम ॥४९॥

इस बीच ब्रह्माजी बोले—यमदूतों की बात सुन कर शिवजी के दूतों ने शक्तिशूलधारी यमदूतों से यह कहा कि आप इसके पुण्य से परिचित नहीं हैं। गो-ब्राह्मण तथा बालकों के हत्यारे भी जिन विभाण्डेश के पूजन करने से पाप-विमुक्त हो जाते हैं—उनकी महत्ता को आप लोग वस्तुतः समझ नहीं पाये हैं। हे दूतों! इस बगुले ने तो विभाण्डेश के पूजन करने के पश्चात् उन्हें अर्पित किया हुआ प्रसाद भक्षण किया है। शिवदूतों से उपर्युक्त कहे जाने पर भी जब यमदूत उसे बाँध कर ले जाने को उद्यत हुए तो यमदूत यह कहने लगे कि हे शिवदूतों! हमारे जीवित रहते आप लोग इसे नहीं ले जा सकते। अतः हमें मार कर आप इसे शिवलोक ले जायें। ऐसा कहते हुए यमदूतों ने अपने हथियार निकाले और शिवदूतों के साथ युद्ध करने लगे। हे मुनिवर! अनेक अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से शत्रुओं के भयवर्धक उभयपक्षी युद्ध के अनन्तर यमदूतों के अस्त्र-शस्त्र एवम् आयुध नष्ट हो गए और वे यमपुर को भाग गए। तत्पश्चात्, हे नारद! शिवदूतों ने उस बगुले को अग्रसर कर शान्तचित्त से विमान के आगे के हिस्से में बैठा कर शिवपुर ले गए। यमदूतों ने बारम्बार रोते हुए अपनी गाथा यमराज को सुनाई। उनकी बातें सुनकर महामना यमराज ने चित्रगुप्त को बुला कर इस सम्बन्ध में निर्णय

---

१. 'पुण्यं मतम्' इति 'क'। २. 'गोघ्न-ब्रह्मघ्न-बालघ्नो जनः' इति 'क'।
३. 'तं समर्प्यं महामत्स्याः खादिता येन चारुणा' इति परिष्कृतः पाठः।
४. 'सुरसङ्घैश्च' इति 'क'। ५. 'याम्याश्च' इत्यपेक्ष्यते। मूले सन्धिः आर्षः।
६. 'बकधर्मविनिर्णयम्' इति 'क'। 'घ' पुस्तके अयमधिकः श्लोको वर्तते—
'कारयामास वै विप्र यथावस्तुसमाहितः। विचारं सुचिरं कालं धर्माधर्मविनिर्णयम्' ॥

शिवयोग्युवाच—

गच्छ देवं शिवं पश्य तथैव गिरिजासरम् । आक्रम्य स गिरेः कूटं भासयन्तं दिशो दश ॥३८॥
क्रान्तीशं नाम देवेशं क्रान्त्वा पर्वतनायकम् । संस्थितो रुद्रकन्याभिः सेवितं सुमनोहरम् ॥३९॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं वामे दिनकरं व्रज । सम्पूज्य दिननाथं वै परिक्रम्य महेश्वरम् ॥४०॥
सम्पूज्य गिरिजां भीम तदा कुम्भं हि भेत्स्यसि । इत्युक्त्वा शिवयोगी तं वामे कूर्माचलस्य हि ।
नागं प्रदर्शयामास घोरं प्राणिविनाशकम् । तं चूडं गदया भीमो निजघान महाबलः ॥४२॥
ततो वामे महाभागास्तीर्थानि विविधानि च । गिरिजा-बिन्दुकासङ्गे सुपुण्यं गिरिजासरम् ।
मनोवाक्कायभूतानां पातकानां प्रणाशनम् । अदर्शयन्महाभागाः शिवक्रान्तगिरिं ततः ॥४४॥
निमज्य विधिवत्तत्र गिरिजां पूज्य वै ह्रदे । सन्तर्प्य पितृदेवादीन् भीमसेनो महाबलः ॥४५॥
शिवयोगिप्रदिष्टेन मार्गेण क्रान्तपर्वतम् । स ययौ मुनिशार्दूला भीमो भीमपराक्रमः ॥४६॥
सम्पूज्य तत्र क्रान्तीशं गिरिजामपि सव्रताः । स च तीर्थसरिन्मध्ये निमज्य च पुनःपुनः ॥४७॥
वामे दिनकरं देवं गत्वा सम्पूज्य वै द्विजाः । नदीं सुविशदां भीमो दृष्ट्वा संस्नाप्य वै द्विजाः ॥
स्नात्वा दिनकरं देवं देवीं वै सुधिकां तथा । सम्पूज्य मुनिशार्दूलाः परिक्रम्य स पर्वतम् ॥४९॥
ययौ स कुम्भकर्णस्य यत्र गण्डे महत्सरः । तत्र गत्वा ततो भीमो देवीं चाऽखिलतारिणीम् ॥५०॥
सस्मार मुनिशार्दूला देवपुष्पैः सुपूजिताम् ।

शिवयोगी ने कहा—तुम भगवान् शङ्कर के साथ ही 'गिरिजा-सर' को देखो। वह पर्वत के शिखर को आक्रान्त कर दसों दिशाओं को आभासित कर रहे हैं। तत्पश्चात् 'कूर्माचल' (पर्वत) को अभिभासित करते हुए रुद्रकन्याओं से सेवित 'क्रान्तेश्वर महादेव को दिखाया। फिर यह कहा कि उनका दर्शन एवं वाम भाग में 'सूर्यनारायण' का दर्शन कर भगवान् शङ्कर की परिक्रमा करना। तब 'गिरिजा' का पूजन करना। तत्पश्चात् उसकी खोपड़ी को तोड़ना। तदनन्तर शिवयोगी ने 'कूर्माचल' (पर्वत) के वाम भाग में स्थित प्राणियों के नाशक भयङ्कर नाग[1] को बताया। इस पर भीम ने तत्काल गदा से प्रहार कर उसे मार डाला। हे महाभागो! वहाँ वाम पार्श्व में अनेक तीर्थ हैं। 'गिरिजा' और 'बिन्दुका' के सङ्गम पर 'गिरिजासर' है। वह मानसिक, वाचिक और शारीरिक पापों का विनाशक है। तदनन्तर 'शिवक्रान्तगिरि'[2] को देखते हुए उसने स्नान किया। फिर 'गिरिजा' का पूजन करने के पश्चात् देव-पितृ-तर्पण करने के उपरान्त महाबली भीम शिवयोगी द्वारा निर्दिष्ट 'क्रान्त'-पर्वत पर आरूढ़ हुआ। तब 'क्रान्तीश' और 'गिरिजा' का पूजन किया। वहाँ के तीर्थ और नदियों में स्नान कर बाईं ओर 'सूर्य भगवान्' का पूजन कर आगे विशाल नदी में स्नान कर 'दिनकर' और 'सुधिका' देवी का पूजन कर क्रान्त-पर्वत की परिक्रमा करते हुए उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ कुम्भकर्ण के 'गण्डस्थल' पर बड़ा सरोवर विद्यमान था। वहाँ देवपुष्पों से सुपूजित 'अखिलतारिणी[3] तथा भीमादेवी'[4] को सम्बोधित कर भीमसेन ने कहा ॥ ३८-५० ॥

१. 'नागनाथ' नाम से प्रसिद्ध—चम्पावत में तहसील के निकट। २. क्रान्तेश्वर।

३. खिलपति—स्थानीय नाम। यहाँ पर सन् १८१४ ई० में के० हिरसी तथा गोरखा अधिकारी काजी अमरसिंह थापा के मध्य युद्ध हुआ था। कैप्टन हिरसी पराजित होकर गोरखाओं द्वारा अपहृत किया गया था। ४. देवी भागवतानुसार—'हिमाद्रौ भीमादेवी' यह कथन प्रसिद्ध है। 'भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति'—दुर्गा सप्तशती अध्याय ११.५२।

भीम उवाच—

नमाम्यहं महादेवीं योगमायां हरिप्रियाम् ॥ ५१ ॥

कालपाशनिबद्धानां लोकानां हितकारिणीम् । निशुम्भस्य च शुम्भस्य प्राणविच्छेदकारिणीम् ॥

पूजितां देवभुवने महेन्द्रेण महात्मना । कालरात्रिं महारात्रिं योगरात्रिं शिवप्रदाम् ॥५३॥

देवीं कुमारमातां वै कुमारीं विन्ध्यवासिनीम् । गिरिराजसुतां भद्रां कल्याणीं मङ्गलप्रदाम् ॥

नन्दगोपसुतां देवीं गौरीं ब्रह्मर्षिसेविताम् । सुनन्दप्रमुखैर्दिव्यैः पार्षदैर्विनिषेविताम् ॥५५॥

संसाराखिललोकानां तारिणीं परमेश्वरीम् ।

व्यास उवाच—

एवं स्तुता महादेवी भीमेन मुनिसत्तमाः ॥ ५६ ॥

आविर्बभूव भूखण्डं भित्त्वा चाखिलतारिणी । तां दृष्ट्वा भीमसेनस्तु प्रफुल्लवदनो द्विजाः ॥

नमश्चक्रे महामायां संसारभयनाशिनीम् । नमस्कृता महादेवी भीमसेनेन वै द्विजाः ॥५८॥

वरं गृहाण वै भीम मत्तस्तु समुवाच ह । ततस्तु भीमस्तां देवीं याचयामास वै वरम् ॥५९॥

कुम्भकर्णस्य गण्डं वै भित्त्वा सम्यक् स्थलं भवेत् ।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६० ॥

भीमोऽपि गदया गण्डं कुम्भकर्णस्य वै द्विजाः । भित्त्वा निष्क्रामयामास गण्डकीं सरितां वराम् ॥

ततस्तु लोहदण्डं वै भित्त्वा तस्य दुरात्मनः । पुण्यां लोहवतीं नाम नदीं संवाहयद् द्विजाः[1] ॥६२॥

गण्डकी-लोहसरितोः सङ्गमान्ते द्विजोत्तमाः । पुत्रस्य प्रतिमां कृत्वा स्थापयामास पाण्डवः ॥६३॥

भीम ने प्रार्थना की—योगमाया-रूपिणी भगवान् शंकर को प्रिय लगने वाली महादेवी को मैं प्रणाम करता हूँ । कालपाश में बँधे हुए लोगों का हित करने वाली एवं शुम्भ और निशुम्भ का वध करने वाली, स्वर्ग में महेन्द्र से संमानित, कालरात्रि, महारात्रि तथा योग-रात्रिरूपिणी कल्याणदात्री, कुमार-माता[3], विन्ध्यवासिनी, गिरिराजपुत्री[2], मङ्गलप्रदा, भद्रा, देवी, नन्दगोप की पुत्री, तथा ब्रह्मर्षि एवं नन्दादि पार्षदों से सेवित अखिल लोक का उद्धार करने वाली[4] आदि नामों से कही गई भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१–५५ ॥

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार भीम के द्वारा स्तुति किये जाने पर समग्र संसार का उद्धार करने वाली भगवती पृथ्वी का भेदन कर प्रकट हुईं[5] । उन्हें देख भीम ने बड़ा प्रसन्न हो प्रणाम किया । तब भगवती ने भीम से वर माँगने के लिए कहा । भीम ने यह वर माँगा कि 'कुम्भकर्ण के गण्डस्थल के तोड़ने का स्थान वन के रूप में परिणत हो जाये' ॥ ५६–५९ ॥

व्यासजी ने पुनः कहा—भगवती ने 'तथास्तु' कहकर भीम की प्रार्थना स्वीकार कर ली ओर वह अन्तर्धान हो गईं । तब भीम ने गदा से कुम्भकर्ण के गण्डस्थल को तोड़कर वहाँ 'गण्डकी'[6] नदी प्रवाहित की । तदनन्तर उस दुरात्मा के लोहदण्ड को तोड़कर पवित्र 'लोह-

---

१. 'नदीं संवाहिता द्विजाः'—'क' ।
२. गौरी ।
३. 'पञ्चमं स्कन्दमातेति'—देवीकवच ।
४. तारा ।
५. स्वयम्भू मूर्ति ।
६. स्थानीय नाम 'गिडियो' ।

विरच्य ते व्रजं सर्वे गवां संचरणाय च। ययुर्नागपुरं रम्यं नागकन्यानिषेवितम् ॥२४॥
संचारणाय ते नागा गवां सत्यव्रते स्थिताः। नागकन्यासमूहे वै रक्षणायोपरेमिरे ॥२५॥
उपदिष्टास्तदा कन्या नागमुख्यैस्तपोधनाः। ता गाः संचारयामासुर्विस्तीर्णे गोपिकानने ॥२६॥
शिवमाराधयन्त्यस्ताश्चारयन्त्यश्च गास्तदा। ददृशुः काननं घोरं नानापादपवेष्टितम् ॥२७॥
नानावृक्षलताकीर्णं शिवाभिश्च निनादितम्। तत्र ताः शंकरं दृष्ट्वा चिक्रीडुर्द्विजसत्तमाः ॥२८॥
आराधयन्त्यो गोप्यस्तं शंकरं लोकशंकरम्। ददृशुः पर्वताग्रे वै गिरिराजगुहां शुभाम् ॥२९॥
शाण्डिल्येन महाभागा भूतले सुप्रकाशिताम्। तथा सरस्वतीं गङ्गां समाहूतां महर्षिणा ॥३०॥
गुहाद्वारं समायान्तीं पुण्यतोयवहां शुभाम्। तां दृष्ट्वा तादृशीं पुण्यां शाण्डिल्यस्य महागुहाम् ।
हरं सम्पूजयामासुस्तास्तत्र मुनिसत्तमाः। तासां सम्पूजयन्तीनां मूलनारायणाङ्गजा ॥३२॥
ददर्श कन्दरायां वै रन्ध्रं पाषाणसम्भवम्। दृष्ट्वा रन्ध्रं सुचपला हित्वा पूजां हरस्य च ॥३३॥
उवाच ताः सखीः सर्वाः प्रविशन्त्विति शोभनाः। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सख्यः सर्वाः सुशोभनाः।
शाण्डिल्यस्य महासत्यं पुरस्कृत्य तपोधनाः। प्रविशुः कन्दरां दिव्यां भाषयन्त्यः शुभं वचः ।
यद्यस्माकं परा भक्तिः शङ्करे देवसेविते। तर्ह्येनां चातिशोभाढ्यां गुहां निःसृत्य यामहे ॥३६॥
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलास्ताः सर्वास्तां गुहां शुभाम्। निससर्जुर्महापुण्यां पुरस्कृत्य महेश्वरम् ।
ऊचुस्ता मुनिशार्दूला रन्ध्रे तस्मिन् विनिःसृताः। धर्माधर्मपरीक्षैषा अस्माकं निष्फला गता ।

के लिए नागकन्याओं को नियत किया। तत्पश्चात् नाग लोग नागपुर चले गए। प्रमुख नागों के कथनानुसार नागकन्यायें गायों को चराती हुई विस्तृत गोपीवन में 'गोपीश्वर' की आराधना में तत्पर रहीं। अनेक प्रकार के वृक्षों से संकुलित उस गोपीवन में एक दिन उन्होंने सियारियों को शब्द करते हुए देखा। भगवान् शङ्कर की आराधना करते हुए उन नागकन्याओं ने शिवजी के समक्ष नाचना आरम्भ कर दिया। इतने ही में उन्होंने पहाड़ के अग्रभाग में 'शाण्डिल्य' मुनि द्वारा प्रकाशित एक गुहा[1] को देखा। वहीं पर गुहा के द्वार पर महर्षि द्वारा आहूत पवित्र जल को प्रवाहित करती हुई 'सरस्वती-गङ्गा' को भी देखा। मुनिश्रेष्ठो! उस महागुहा को देख उन्होंने वहीं शिव की पूजा की। उनके पूजा करते हुए मूलनारायण की पुत्री ने गुहा के भीतर पाषाण के ऊपर एक छिद्र[2] देखा। सहज-सुलभ चञ्चलता के कारण उन नागकन्याओं ने पूजन को छोड़ उस छिद्र में प्रवेश किया। मूलनारायण की कन्या के कथनानुसार शाण्डिल्य ऋषि के माहात्म्य को अभिलक्षित कर 'हमारी शिवभक्ति यदि सच्ची है तो हम गुहा को पार कर जायँ'—यह कहती हुई वे भगवान् शङ्कर को आगे कर उस गुहा में प्रविष्ट हो पार कर गईं। शिवजी को वहाँ न पाकर वे कहने लगीं कि हमारी यह परीक्षा

१. स्थानीय प्रचलित नाम 'सान्योडधार' है। वहाँ एक नागमन्दिर भी है। 'शाण्डिल्य' ऋषि कश्यपवंशी महर्षि 'देवल' के पुत्र थे। यह रघुवंशी दिलीप के पुरोहित थे। 'शतानीक' के पुत्रेष्टि यज्ञ में वह प्रधान ऋत्विज् और 'त्रिशङ्कु' के यज्ञ में प्रधान होता थे। कुछ पुराणों के अनुसार यह ब्रह्मा के सारथि थे। स्मृतिग्रन्थकार 'शङ्ख' और 'लिखित' इन्हीं के पुत्र थे। इनका 'भक्तिसूत्र' प्रसिद्ध है। इसमें तीन अध्याय हैं। यह भक्तिमार्ग के अनुयायी हैं।

२. 'सान्योडधार' गुहा का छिद्र (तंग रास्ता)।

नास्माभिः शङ्करः कान्तः प्राप्यते नान्यथा क्वचित् । इति सम्भाषयन्तीनां गोपीनां गा विदूरगाः॥
बभूवुर्मुनिशार्दूलाः पश्यन्तीनामितस्ततः । ततो गाः संप्रपश्यन्त्यो ययुः सर्वा वनान्तरम् ॥४०॥
इतस्ततः प्रधावन्त्यो नागकन्यास्तपोधनाः । ततो वनान्ते गाः सर्वाश्चरन्त्यो ददृशुर्द्विजाः ॥४१॥
अविच्छिन्नं तृणं भूरि तृणलोभेन दूरगाः । गवां मध्ये महादेवं सिद्धकिन्नरसेवितम् ॥४२॥
द्वादशादित्यसंकाशं वनान्ते ददृशुर्द्विजाः । यस्य भासा जगत् सर्वं भासितं सचराचरम् ॥४३॥
स ज्योतिर्मध्यगो भानुर्यस्य भासा पराजितः । तं ज्योतिर्मध्यगं लिङ्गं गवां मध्ये विराजितम् ।
ददृशुस्तास्तदा गोप्यः शङ्करस्य महात्मनः । तं दृष्ट्वा नागमुख्यानां गोप्यः सर्वाः सुशोभनाः ।
नमश्चक्रुर्महाभागाः प्रफुल्लमुखपङ्कजाः । नमस्कृत्य महादेवं ताः सर्वाश्चातिशोभनाः ॥४६॥
देवेशं पूजयामासुर्नियमव्रतकर्शिताः । ततस्तं प्रार्थयामासुर्गोप्यः सर्वास्तपोधनाः ॥४७॥
प्रणतास्तन्मनस्काश्च तस्य ध्यानपरायणाः ॥ ४८ ॥

गोप्य ऊचुः—

नमो हरायामितभूषणाय चिताभस्मद्रुमविलेपनाय ।
वृषध्वजाय सुवृषप्रभाय शिवाय शान्ताय नमो नमस्ते ॥ ४९ ॥
नमो विरूपाय कलाधराय षडर्धनेत्राय परावराय ।
ऋषिस्तुतायापरिसेविताय नमो नमस्ते वृषवाहनाय ॥ ५० ॥

व्यास उवाच—

इति सम्यक् स्तुतो देवो गोपीभिर्मुनिसत्तमाः । आविश्चक्रे महाज्वालां दुर्दर्शां देवदानवैः ॥५१॥
ततो ज्वालामुखाद्देवो निःसृत्य च तपोधनाः । उवाच देवदेवेशो गोपीमध्यगतः स्वयम् ॥५२॥

निष्फल हो गई है। इस बीच उनकी गायें उनकी आँखों से ओझल हो गईं। वे इधर-उधर देखती रहीं। गायों को ढूँढते-ढूँढते वे नागकन्याएँ दूसरे वन में पहुँचीं। वहाँ उन्होंने उस गोचर भूमि में हरी-भरी घास चरती हुई गायों को देखा। वे गायें घास के लोभवश दूर चली गई थीं। विप्रवरो! उन गायों के बीच में उन्होंने वन के छोर पर सिद्धादियों से सेवित बारहों आदित्य के समान तेजोयुक्त भगवान् शंकर को देखा। उन्होंने देखा कि उस दीप्ति से चराचर जगत् दीप्तिमान् हो रहा है। उन्हीं की गायों के मध्य उस लिङ्ग के तेजोमण्डल से आकाश के मध्यवर्ती सूर्य की ज्योति फीकी पड़ गई है। उस ज्योतिर्मय लिङ्ग को उन गोपियों ने देखा। उसे देख प्रसन्नवदना गोपियों ने प्रणाम किया तथा नियमपूर्वक उनका पूजन किया। वे तल्लीन होकर भगवान् की प्रार्थना करने लगीं ॥ २२-४८ ॥

गोपियाँ बोलीं—असङ्ख्य भूषणभूषित, चिताभस्मलिप्ताङ्ग, वृषध्वज, मोर की कान्ति-स्वरूप शान्त शिव को हम प्रणाम करते हैं। विरूप, कलाधर, त्रिनेत्र, चन्द्रशेखर तथा महर्षियों से संस्तुत शङ्कर को हम बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ४९-५० ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिश्रेष्ठो! गोपियों (नागकन्याओं) की प्रार्थना को सुन शिवजी ने, देवों और दानवों से न सहन करने योग्य ज्वाला वहाँ प्रकट कर दी। तपोधनो! उस ज्वाला के मुख से भगवान् प्रकट हो गोपियों के मध्य बोलने लगे ॥ ५१-५२ ॥

सा देवमुख्यैर्विनिषेविता शिवा ददात्यभीष्टं तुषिता महीतले ।
सैव प्रहृष्टा सकलापदप्रदा सा एव गीता वरदा दिवौकसा ॥ ११ ॥
चराचरं व्याप्य इदं महीतले महोद्भटा दैत्यभटा यया द्विजाः ।
निपातिता रङ्गगता महाबलाः सा कालिका रङ्गगता विराजते ॥१२॥

सूत उवाच—

शैलोद्देशे महादेव्या वासं श्रुत्वा नृपोत्तम । व्यासदेवाय धर्मज्ञाः पप्रच्छुः पुनरेव हि ॥१३॥

ऋषय ऊचुः—

शैलोद्देशे महाकाली विन्ध्यं च तुहिनं तथा । सन्त्यज्य मुनिशार्दूला न्यवसत् केन हेतुना ॥१४॥

व्यास उवाच—

कदाचित् तां महादेवीं तुहिनाचलवासिनीम् । महेन्द्रप्रमुखा देवाः शुम्भेन च निराकृताः ॥
सर्वे शैलं समागत्य तुष्टुवुः परमेश्वरीम् ॥ १५ ॥

देवा ऊचुः—

देव्या यया त्रिभुवनं सचराचरं च व्याप्तं बिभर्षि भुवनं च धराधरं च ।
शेषः फणाशतशतैरपि नम्रभूतो सा वै धराधरसुताऽवतु देवपालम् ॥ १६ ॥
संस्तुता या महादेवी ब्रह्मणा परमेष्ठिना । योगनिद्रेति विख्याता विष्णोरतुलतेजसः ॥१७॥
यया त्यक्तो जगन्नाथो जघान मधुकैटभौ । आत्मकर्णमलोद्भूतौ मोहितौ योगमायया ॥१८॥
साऽस्मानवतु कल्याणी शुम्भदैत्येन निर्जितान् । ब्रह्मविष्णुमहेशानां तेजोराशिसमुद्भवा ॥१९॥
संस्तुता देवगन्धर्वैर्दिव्यशूलप्रहारिणी । साऽस्मानवतु कल्याणी महिषासुरनाशिनी ॥२०॥

वही देवताओं को भी वर देती हैं। उनका माहात्म्य कहाँ तक कहें ? वही चर-अचर को व्याप्त कर, शक्तिशाली दैत्यों का युद्धक्षेत्र में विनाश कर, विराजमान हैं ॥ ३-१२ ॥

सूतजी बोले—'शैल' पर्वत के प्रदेश में भगवती का वास सुन इस सम्बन्ध में ऋषियों ने व्यास महर्षि से पुनः जिज्ञासा की ॥ १३ ॥

ऋषि बोले—'हिमाचल' और 'विन्ध्य' पर्वत को छोड़ भगवती ने 'शैल' पर्वत पर वास क्यों किया ? ॥ १४ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—एक समय 'शुम्भ' दैत्य से पराजित देवगण 'शैल' पर्वत पर आकर भगवती की स्तुति करने लगे ॥ १५ ॥

देवगण बोले—जिस देवी ने चराचर जगत् को व्याप्त कर धारण किया है तथा जिन्हें देख 'शेष' भगवान् भी अपने असंख्य फनों को नीचे झुका कर नम्र हो जाते हैं, वह पर्वतराजपुत्री हम सब की रक्षा करें। ब्रह्मा ने भी अपनी रक्षा के लिए जिनकी स्तुति की थी[1]। जिन्होंने अतुल पराक्रमी विष्णु भगवान् के कान के मैल से उत्पन्न 'मधु' और 'कैटभ' नामक राक्षसों को भी भगवान् के नेत्रों में स्थित निद्रारूपी 'योगमाया' बनकर निद्रा का त्याग कराने के पश्चात् विमोहित करा उन दोनों राक्षसों का विष्णु के द्वारा ही वध कराया, वह भगवती हमारी रक्षा करें। जो भगवती समग्र देवों के तेजःपुञ्ज से प्रकट हुई एवं दिव्य शूल से महिषासुर का नाश करने वाली हैं—वही जगज्जननी हमारी रक्षा करें। दक्ष प्रजापति के

१. ब्रह्मा की स्तुति 'दुर्गा सप्तशती' अध्याय १ श्लोक ७३-८७ तक देखें।

दक्षप्रजापतेर्गेहे अवतीर्य मनोरमा। या काली गीयते लोके साऽस्मानवतु शाङ्करी[1] ॥२१॥

व्यास उवाच—

इति संस्तुवतां[2] तत्र देवानां परमेश्वरी। आविर्बभूव पुरतः संस्नात्वा जाह्नवीजले ॥२२॥

उवाच सा महाभागा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ २३ ॥

देव्युवाच—

स्तोत्रं ममैतत् क्रियते दैत्यराजनिराकृतैः। साम्प्रतं देवदेवेन्द्र सहैतैर्देवतागणैः ॥२४॥

तत् त्वं कथय देवेन्द्र येन मां समुपागताः। हेतुना त्रिदिवं त्यक्त्वा सहैतैर्देवतागणैः ॥२५॥

इन्द्र उवाच—

त्वत्प्रसादाज्जगन्मातस्तिष्ठन्ते त्रिदिवौकसः। स्वर्गे निरामयाः सर्वे मया संशासिताः शुभे ॥

साम्प्रतं शुम्भदैत्येन निर्जिताश्छद्मकारिणा। देवताः समनुप्राप्ताः शरणं ते वरेश्वरि ॥२७॥

कुरु तस्य वधोपायं सामात्यो विनशिष्यति। येनोपायेन देवानां स शत्रुः परमेश्वरि ॥२८॥

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा महादेवी पुनर्वचनमब्रवीत्। महेन्द्रप्रमुखान् देवान् प्रणतान् कार्यसिद्धये ॥२९॥

देव्युवाच—

हनिष्यामि दुराचारं सह मित्रं सबान्धवम्। शुम्भं चैव निशुम्भं च चण्डमुण्डावुभावपि ॥३०॥

तावत् तत्र वसिष्यामि यावत् तं दितिजाधमम्। हनिष्यामि दुराचारं शैलोद्देशे न संशयः ॥३१॥

घर आविर्भूत हो जो 'काली' के नाम से विख्यात हुई। वही हमारी रक्षा करें ॥ १६–२१ ॥

व्यासजी ने कहा—देवों के इस प्रकार स्तुति किये जाते हुए दुर्गतिहारिणी भगवती 'जाह्नवी'[3] में स्नान कर स्वयं प्रकट हो गईं। उन्होंने देवों के समक्ष कहना आरम्भ किया ॥ २२–२३ ॥

देवी बोलीं—देवराज इन्द्र! आप दैत्यों से पराजित होकर देवों के साथ मेरी स्तुति कर रहे हैं। कहिए आप लोग क्यों आए हैं? ॥ २४–२५ ॥

इन्द्र ने कहा—मातः! हम आपकी कृपा से सदैव कुशली रहते हैं। इस समय 'शुम्भ' ने हमें कपट से जीत लिया है। अतः हम आपकी शरण में आए हैं। अब उसके वध का उपाय करें ॥ २६–२८ ॥

व्यासजी बोले—देवी ने 'तथास्तु' कहा। फिर वह देवों की सिद्धि के लिए कहने लगीं।

देवी ने कहा—मैं शुम्भ, निशुम्भ तथा चण्ड, मुण्ड का वध अवश्य करूँगी। इस कार्य के लिए मैं 'शैल' पर्वत पर वास करूँगी ॥ ३०–३१ ॥

---

१. 'हिमालयसुता देवी पार्वती शंकरप्रिया।
उमा या गीयते लोके साऽस्मानवतु 'शाङ्करी'—इत्यधिकः-'क'।

२. 'संस्तूयमानानाम्'-'क'।

३. 'हाट काली' मन्दिर के कुछ दूर नीचे 'जाह्नवी' नाम से प्रसिद्ध एक जलप्रपात है। वहीं स्रोत के मुख के पास एक 'ताम्रपत्र' अङ्कित है। अब वह विकृत हो चला है। लोगों की रगड़ के कारण आरम्भिक अक्षर घिस गए हैं।

ऋषय ऊचुः—

प्रमाणं वद विप्रर्षे क्षेत्रस्यास्य विनिश्चितम् । यानि तत्र च तीर्थानि क्षेत्रे बालीश्वराह्वये ॥१॥
सन्ति मुख्यानि लिङ्गानि देवदेवस्य शूलिनः । वयं तानि सुपुण्यानि श्रोतुमिच्छामहे द्विज ॥२॥

व्यास उवाच—

प्रमाणं मुनिशार्दूलाः शृण्वन्तु सुसमाहिताः[1] । मयोदितानि पुण्यानि तीर्थानि सुबहूनि च ॥३॥
चन्द्रभागां समारभ्य यावद् गौर्याः सुसंगमम् । तावत्क्षेत्रं महापुण्यं विद्यते मुनिसत्तमाः ॥४॥
चन्द्रभागा सरिच्छ्रेष्ठा पावनोद्देशसम्भवा । सङ्गमे रामगङ्गायाः संगता पापनाशिनी ॥५॥
सङ्गमे चन्द्रभागायाः निमज्य विधिपूर्वकम् । जले चन्द्रेश्वरं देवं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः ॥६॥
प्रविश्य तत्र सन्तर्प्य पितॄन् याति नरो ध्रुवम् । लक्ष्मीक्षेत्रे[2] ततो गत्वा निमज्य विधिपूर्वकम् ।
श्रियं प्राप्नोति विपुलां महालक्ष्म्याः प्रसादतः । तस्माददूरे सन्तीर्वा पुण्यां गोदावरीं व्रजेत् ।
गोदावरी-रामयोश्च सन्निपाते निमज्जनात् । जातिस्मरः सम्भवति तथा गोविन्दपूजनात् ॥९॥
ततस्तीर्त्वा महातीर्थं मालिकाख्यं तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च विधिवद्रूपवान्[3] जायते नरः ॥
ततस्तु रामगङ्गायामुत्क्रान्त्याः सङ्गमे नरः । शिवलोकमवाप्नोति निमज्य विधिपूर्वकम् ॥११॥
क्रान्ति-रामसरिन्मध्ये बालितीर्थमिति स्मृतम् । तत्र स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ।
देवं बालीश्वरं गच्छेत् क्षेत्रपालं प्रपूज्य वै । बालीश्वरं च सम्पूज्य सायुज्यं याति मानवः ॥१३॥
वामे भृङ्गीश्वरं देवं दक्षिणे शाङ्करीं तथा । सम्पूज्य मानवा यान्ति शिवलोकं न संशयः ॥१४॥
क्रान्त्या मूले करीराख्यं पूज्य प्राप्नोति सद्गतिम् । वामपार्श्वे महादेवीं देवीनां कुलतारिणीम् ॥

ऋषियों ने कहा—विप्रर्षे ! अब हम लोग 'बालीश्वर' क्षेत्र का विस्तार, उस क्षेत्र के तीर्थ एवं प्रमुख शिवलिङ्गों के सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हैं । कृपया आप हमें बतलायें ॥१-२॥

व्यासजी बोले—ऋषिवरों ! इस क्षेत्र का प्रमाण तथा तीर्थादि मैं बतलाता हूँ । आप लोग सुनें । 'चन्द्रभागा' से लेकर 'गौरी' सङ्गम तक यह क्षेत्र है । पावन पर्वत से निकलने वाली 'चन्द्रभागा' नदी आगे चल कर 'रामगङ्गा' में मिलती है । उस संगम में स्नानोपरान्त 'चन्द्रेश्वर' देव का पूजन एवं तर्पणादि करने के पश्चात् 'लक्ष्मीक्षेत्र' में पुनः स्नान कर महालक्ष्मी की कृपा से अतुल सम्पत्ति प्राप्त होती है । फिर 'गोदावरी'-'रामगङ्गा' के संगम में स्नान कर विष्णु की पूजा करने से पूर्वजन्म का स्मरण होता है । तपोधनों ! तब उतर कर 'मालिका'-तीर्थ[4] में स्नान कर मनुष्य रूपवान् होता है । फिर उत्क्रान्ति-संगम में स्नान कर शिवलोक प्राप्त करे । फिर 'क्रान्ति' संगम में स्नान कर बालीश्वर को जाये । वहाँ क्षेत्रपाल और बालीश्वर का पूजन करे । तब बाईं ओर 'भृङ्गीश्वर' तथा दाईं ओर 'शाङ्करी' की

---

१. 'मुनिसत्तमाः'-इत्यपि पाठः-'ख' । २. 'लक्ष्मीतीर्थम्'—'ख' ।
३. 'तत्र स्नात्वा च विधिना सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा । देवं बालीश्वरं गच्छेत् क्षेत्रपालं प्रपूजयेत्'—इतिश्लोकानन्तरम् अग्रिमौ द्वौ श्लोकौ 'ख' पुस्तके न विद्येते । ४. पट्टी माली ।

समर्च्य विधिवत्तत्र श्रियं प्राप्नोति मानवः। ततः क्रान्त्या जले पुण्ये बालतीर्थमिति स्मृतम्॥
बालीश्वरस्य देवस्य पार्श्वे तीर्थोत्तमे शुभे। निमज्य मानवस्तत्र माघस्नानफलं लभेत्॥१७॥
क्रान्तिरामसरिन्मध्ये स्नात्वा प्रेतशिलां शुभाम्। समर्च्य विधिवत्तत्र प्रकम्पन्तीमितस्ततः॥
प्रेतत्वं कुलजातानां तारयित्वा दिवं व्रजेत्। अणुमात्रेण स्वर्णेन पुण्यां प्रेतशिलां हि यः॥१९॥
समर्चति महाभागाः पितृणां तारयेच्छतम्। ततस्तीर्त्वा महातीर्थं बहुलासंगमे स्थितम्॥२०॥
तत्र स्नात्वा नरो विप्रा ऐश्वर्यमिह लभ्यते। बहुलासरितो मध्ये नागतीर्थमिति स्मृतम्॥२१॥
तत्र स्नात्वा विधानेन नागान् सम्पूज्य मानवः। शिवलोकमवाप्नोति कुलत्रयसमन्वितः॥२२॥
ततस्तु रामगङ्गाया मध्ये बिन्दुसरः स्मृतम्। निमज्य पितृकृत्यं च विधायाशु शिवं व्रजेत्॥२३॥
ततस्तु ब्रह्मतीर्थं वै मुनितीर्थं ततः स्मृतम्। तदूर्ध्वं वेणुमध्ये वै रामतीर्थमिति स्मृतम्॥२४॥
तेषु स्नात्वा च मनुजः पितृकृत्यं विधाय च। ब्रह्मलोकमवाप्नोति ब्रह्मणा सह मोदते॥२५॥
क्रान्तिश्च बहुला चैव रामगङ्गा तथैव च। एतास्तिस्रो महापुण्या विद्यन्ते नात्र संशयः॥२६॥
एतासां संगमे स्नात्वा पूज्य प्रेतशिलां शुभाम्। मानवो देवदेहो वै जायते नात्र संशयः॥२७॥
ततस्तु रामगङ्गायां हाटकेशं महेश्वरम्। वामे सम्पूज्य वै विप्राः शिवलोके महीयते॥२८॥
सत्यतीर्थं ततः पुण्यं ततो वेणुसरः स्मृतम्। ततो बाणाह्वयन्नाम ततो रुद्रसरः स्मृतम्॥२९॥
तारातीर्थं ततो गत्वा सूर्यतीर्थं ततः परम्। तेषु स्नात्वा च मनुजो वाजपेयफलं लभेत्॥३०॥
ततस्तु सत्यगामिन्याः सङ्गमे मुनिसत्तमाः। संस्नात्वा मानवस्तत्र नित्यस्नानफलं लभेत्॥३१॥
पावनाख्याच्च संभूतां सुपुण्यां सत्यगामिनीम्। माघस्नानसमं पुण्यं निमज्य प्राप्यते द्विजाः॥
तस्मादधः शेषतीर्थं निःशेषपापनाशनम्। तत्र स्नात्वा च विधिवद् विष्णुलोके महीयते॥३३॥

पूजा करे। वहीं निकट 'क्रान्ति' के मूल में 'करीर'[१] का पूजन करने से सद्गति प्राप्त होती है। तब बाई ओर 'महादेवी' का पूजन करने से मानव लक्ष्मीवान् होता है। तदनन्तर 'क्रान्ति' के जल में सुविदित 'बालतीर्थ'[२] है। उस तीर्थ में स्नान करने से माघ-स्नान का फल मिलता है। 'क्रान्ति' और 'रामगङ्गा' के मध्य काँपती हुई 'प्रेतशिला' है। उसका पूजन करने से कुलगत प्रेतत्व नष्ट होकर स्वर्ग प्राप्त होता है। जो व्यक्ति अणु-मात्र सुवर्ण-युक्त हो 'प्रेतशीला' का पूजन करता है उसके पितृगण तर जाते हैं। तत्पश्चात् 'बहुला' नदी के मध्य नागतीर्थ' है। वहाँ पूजन करने पर तीन कुलों सहित शिवलोक प्राप्त होता है। 'रामगङ्गा' के मध्य में 'बिन्दुसर' है। उसमें स्नान-दानादि करने से 'शिव' प्राप्त होते हैं। तदनन्तर 'वेणु' के मध्य 'ब्रह्मतीर्थ', 'मुनितीर्थ' तथा 'रामतीर्थ' हैं। उनमें स्नान एवं पितृकृत्य करने पर 'ब्रह्मलोक' मिलता है। 'क्रान्ति'[३], 'बहुला'[४] और 'रामगङ्गा'—ये तीनों नदियाँ बड़ी पवित्र हैं। इनके सङ्गम में स्नान तथा 'प्रेतशिला' का पूजन करने से दिव्य देह की प्राप्ति होती है। तब 'रामगङ्गा' के वामभाग में 'हाटकेश्वर'[५] का पूजन कर 'शिवलोक'

---

१. कदाचित् यह 'करवीर' हो। इस नाम के तीर्थ में देवी के रूप में 'महालक्ष्मी' की स्थिति बतलाई गई है।

२. 'बलतिर' नाम से प्रसिद्ध है।
३. 'नैनीगाड़' के नाम से जाती है।
४. 'बरड़ गाड़' के नाम से विदित है।
५. डीडीहाट।

मन्दिरासङ्गमे गत्वा स्नात्वा वै मन्दिरेश्वरम् । समभ्यर्च्य महाभागाश्रिताभस्म विभूषणम् ॥
वाक्पटुत्वं महेशस्य प्रसादाज्जायते ध्रुवम् ॥१३॥
वामे तत्र कलावत्या नाम्ना भूतेश्वरी गुहा । भूतेश्वरं गुहावासं तत्र सम्पूज्य मानवः ॥१४॥
भूतप्रेतादिकानां च न पश्यति महद्भयम् । क्रान्त्याः सुसङ्गमे गत्वा स्नात्वा क्रव्यादनायकम् ।१५॥
समभ्यर्च्य महादेवमात्मनः पदमश्नुते । तत्र वामे च गिरिजां वाराहीं पूज्य मानवः ॥१६॥
श्रियमेवातुलां प्राप्य¹ शिवं याति परत्र च । दक्षिणे मन्दिराद्रौ वै कैलासेशं महेश्वरम् ॥१७॥
धनं धान्यं धरां धर्मं नरः प्राप्नोति पूज्य वै² । ब्राह्मणो लभते विद्यामितरस्तु महार्थताम् ॥
ततो वेत्रवतीसङ्गे स्नात्वा ऋक्षवतीं शुभाम् । तारकेशं समभ्यर्च्य ह्रदमध्यगतं हरम् ॥१९॥
यावद्दक्षगणाः सर्वे निवसन्ति तपोधनाः । तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिर्नात्र संशयः ॥२०॥
ततस्तु शाङ्करी पुण्या गणपर्वतसम्भवा । सङ्गमे सङ्गता पुण्या कलावत्यास्तपोधनाः ॥२१॥
तयोर्मध्ये महापुण्यं शाण्डिल्यस्याश्रमं स्मृतम् । यत्र गत्वा च शूद्रोऽपि द्विजत्वं प्राप्यते शुभम् ॥
तयोर्मध्ये महाक्षेत्रं दिव्यं शाण्डिल्यसंज्ञकम् । क्षेत्रे तत्र महादेवः शाण्डिल्येशेति गीयते ॥२३॥
शाङ्करीसरितोर्मध्ये तीर्थं माणवकाह्वयम् । विद्यते सुरगन्धर्वैः सेवितं पुण्यसंज्ञकम् ॥२४॥
मुण्डनं चोपवासं च विधायाशु प्रतर्प्य वै । स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीत फल्गुतीर्थाच्छताधिकम् ॥
विद्यते तत्र सत्कृत्य पितॄन् सर्वांस्तपोधनाः । तीर्थे माणवके स्नात्वा सन्तर्प्य च पितॄन्नरः ॥
शाण्डिल्येशं समभ्यर्च्य विधानेन महेश्वरम् । कुलायुतं समुत्तार्य प्राप्नुते शिवमन्दिरम् ॥२७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे कलावती-माहात्म्ये एकोनत्रिंशच्छततमोऽध्यायः ॥

'मन्दिरा' नदी के सङ्गम में स्नान कर 'मन्दिरेश्वर' का पूजन करने से 'वाणी' की पटुता प्राप्त होती है। कलावती' के वाम भाग में 'भूतेश्वरी' तथा गुहा में 'भूतेश्वर' का पूजन कर भूत-प्रेतादि की बाधा नहीं होती। 'क्रान्ति' के सङ्गम में स्नान तथा 'क्रव्यादनाथ' का पूजन कर 'आत्मतत्त्व' में विलय हो जाता है। वहीं वामभाग में 'वाराही तथा गिरिजा' का पूजन कर इस लोक में अतुल सम्पत्ति प्राप्त कर परलोक में 'शिवधाम' मिलता है। फिर दक्षिण की ओर 'मन्दिराचल' में 'कैलासेश' का पूजन कर धन, धान्य, धरा और धर्म का लाभ होता है। (तब 'ऋष्य'³ सरोवर में स्नान कर 'ऋष्यशङ्ग'⁴ की अर्चना करने से) ब्राह्मण को विद्या और अन्य जनों को धनलाभ होता है। तब 'वेत्रवती' के सगम में स्नान एवं 'ऋक्षवती'⁵ तथा 'ह्रद' में विराजमान 'तारकेश'⁶ का पूजन करने से नक्षत्रों की स्थितिपर्यन्त सन्तति विद्यमान रहती है। तत्पश्चात् 'गण'पर्वत⁷ से निकलने वाली 'शाङ्करी' नदी 'कलावती' से मिलती है। उन

---

१. 'श्रियं स चातुलां प्राप्य' 'ख'।

२. 'ततो ऋष्यसरे स्नात्वा ऋष्यशृङ्गं प्रपूज्य वै'। 'ख' पुस्तके अधिकः वर्तते।

३. भागवत (९, २३-२१) में इन्हें 'देवातिथि' का पुत्र तथा 'दिलीप' का पिता कहा है।

४. प्रसिद्ध ऋषि —विभाण्डक के पुत्र तथा दशरथ की पोष्य पुत्री 'शान्ता' के पति।

५. 'ऋक्षेश्वर'-मन्दिर तो है (लोहाघाट)। ६. 'तारकेश्वर'। ७. 'गणधुरा' नाम से जाना जाता है।

१७०

व्यास उवाच—

तत्र काकाद्रिमारुह्य कर्णालीमध्यगं शुभम्। काकेश्वरीं महादेवीं कौशिकीजलसेविताम् ॥१॥
यां काकाः पूज्य गिरिजामजरामरतां गताः। संस्नात्वा कौशिकीं पुण्यां समारुह्य च पर्वतम् ॥
काकेश्वरीं महादेवीं क्रान्तिकान्तेश्वरं तथा। यः समर्चति तत्रस्थः स याति शिवमन्दिरम् ॥३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे काकाद्रिमाहात्म्ये सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

१७१

ऋषय ऊचुः—

सर्वेष्वेतेषु गिरिषु पर्वतः कोऽस्ति ह्युत्तमः। कुत्र पुण्यं समधिकं प्राप्यते मुनिसत्तम ॥१॥

व्यास उवाच—

सर्वेभ्यो गिरिमुख्येभ्योऽधिको देवतटः स्मृतः। तस्मादप्याधिकः पुण्यो गिरिः पञ्चपुरोऽस्ति वै।
तयोर्मध्ये महादेवी मालिका पूज्यते शिवा। देवगन्धर्वसिद्धैश्च पूजिता वरदेश्वरी ॥३॥
तयोः पर्वतयोर्दिव्यं माहात्म्यं मुनिसत्तमाः। न शक्यते महापुण्यं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥४॥
यत्र पुरेषु दिव्येषु पञ्चसु मुनिसत्तमाः। उषित्वा देवताः सर्वाः सेवन्ते परमेश्वरीम् ॥५॥
गिरिः पञ्चपुरो नाम गीयते पर्वतोत्तमः। तत्र दिव्यानि पुण्यानि देव्याः पञ्चपुराणि वै ॥६॥
देवर्षिसिद्धगन्धर्वैः सन्ति संसेवितानि वै। तमारुह्य गिरिश्रेष्ठं पुराणां दर्शनं शुभम् ॥७॥
यः करोति नरः सम्यक् स धन्यो भूतले स्थितः।
तत्र पुराणि दिव्यानि दृष्ट्वा यो याति मालिकाम् ॥ ८ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! वहाँ पर 'कर्णाली' के मध्यवर्ती 'काकपर्वत' पर आरूढ़ हो 'कौशिकी' (कोसी) के जलों से सेवित 'काकेश्वरी' का पूजन विहित है। उनका पूजन करने से कौवे भी अजर एवं अमर हो गए। अतः 'कौशिकी' में स्नान, पर्वत पर चढ़ना एवं 'काकेश्वरी' तथा 'क्रान्तक्रान्तेश्वर' का दर्शन-पूजन करने से 'शिवलोक' प्राप्त होता है॥ १-३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'काकाद्रि'-माहात्म्य नामक
एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! इन पर्वतों में कौन-सा पर्वत सबसे बढ़कर है? कहाँ पर सबसे अधिक पुण्यलाभ होता है? ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों! यद्यपि इन पर्वतों में 'देवतट'-नामक पर्वत अधिक महत्त्वपूर्ण है, तथापि 'पञ्चपुर' पर्वत सर्वाधिक पुण्यप्रद है। इन दोनों पर्वतों के मध्य में देव-गन्धर्वादि से पूजित 'मालिका' देवी विराजमान हैं। उन पर्वतों का माहात्म्य वर्णनातीत है।

न तस्य वर्णनं शक्यं वक्तुं वर्षशतैरपि । 'अहो कथं न कुर्वन्ति संसारे मग्नमानसाः ॥९॥
यात्रामात्रं महादेव्याः क्षेत्रे नारायणीप्रिये । मालिकाख्ये महापुण्ये श्रावण्यां सिद्धसेविते ।१०।
इति देवा महेन्द्राद्याः प्रब्रुवन्ति पुनः पुनः' । 'पर्वतस्य स्वरूपेण यत्र जागर्ति शाङ्करी ।११।
संसारसारनिर्दग्धाः किं न यान्ति नराधमाः । तत्रस्था देवता: सर्वा ब्रुवन्तीति न संशयः' ।१२।
पवित्राः शिवलिङ्गैर्वै अन्याः सन्ति नगोत्तमाः । एष पर्वतमुख्यो वै देव्या देहोऽस्ति नान्यथा ॥
देहभूतं महादेव्या गिरिं ये यान्ति मानवाः । नैव शोचन्ति ते धन्याः संसारे मुनिसत्तमाः ।१४।
अपि कीटपतङ्गाद्याः समारूढा नगोत्तमे । देवेभ्योऽप्यधिका ज्ञेया मानवाः किमुतः शुभाः ।१५।
यो वै देवतटं ब्रूते गच्छामि पञ्चपर्वतम् । पुरन्दरस्तस्य सम्यक् पादौ मूर्ध्ना नमस्यति ।१६।
तयोः पर्वतयोः सम्यक् वासशुद्धान् दिवौकसः । कुर्वन्ति सिद्धगन्धर्वैः सह विद्याधरोरगैः ।१७।
तयोर्यात्रा न ये मूढाः प्रकुर्वन्त्यतिदुर्गयोः । नियतं नरके वासस्तेषामस्ति न संशयः ।१८।
देवतटोपरि स्थातुं दिव्ये मुक्तिद्वारमपावृतम् । तत्र मुक्तार्थिनां देहपतनं प्राप्यमेव हि ॥१९॥
बहुभिर्भाषितैः पुण्यैः किमत्र मुनिसत्तमाः । विदधन्तु महाशक्तिं मालिकायां विनिश्चितम् ।२०।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मालिकामाहात्म्ये एकसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

सौ वर्षों का समय भी वर्णन के लिए पर्याप्त नहीं है। वहाँ पाँच दिव्य पुरों में देवगणों तथा सिद्धों का वास है। वे सब 'मालिका' की उपासना में संलग्न रहते हैं। अत एव उसका नाम यथार्थ (पञ्चपुर) है। इस हेतु पर्वत पर आरूढ़ हो पांचों पुरों का दर्शन श्रेयस्कर है। साथ ही वह दर्शक भी धन्य है। जो व्यक्ति पाँचों पुरों को देख 'मालिका' देवी के समीप जाता है उसका पुण्यलाभ वर्णनातीत है और वे धन्य हैं। अतः सांसारिक जन विशेषतः श्रावणी पूर्णिमा के दिन इस देवी के क्षेत्र की यात्रा क्यों नहीं करते? इस आश्चर्य को अभिलक्षित कर महेन्द्रादि देव भी 'मालिका' देवी की बार-बार स्तुति करते रहते हैं। यहाँ पर देवी 'पर्वतरूप' में जागरूक हैं। देवताओं को इस बात पर बड़ा आश्चर्य है कि संसार-सार से दग्ध जन ऐसी वरदा देवी के पास क्यों नहीं जाते? यद्यपि अन्य पर्वत-मालायें भी वहाँ शिवलिङ्गों से संयुत हैं, तथापि यह पर्वत तो 'देवी' का प्रत्यक्ष विग्रह है। देवी के 'विग्रह-स्वरूप' इस पर्वत पर जाने वालों का जीवन सफल है। वे शोकविमुक्त रहते हैं। जब इस पर आरूढ़ होने वाले कीड़े-मकोड़े भी देवों की अपेक्षा अधिक सम्मानित समझे जाते हैं तो मनुष्यों की बात ही क्या है? 'देवतट' पर चढ़ कर 'पञ्चपुरपर्वत' पर जाने के इच्छुक व्यक्ति को इन्द्र भी प्रणाम करते हैं। उपर्युक्त दोनों पर्वतों पर वास करने से शुद्ध देहधारियों को सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधरों सहित देवगण—ये सभी प्रणाम करते हैं। जो अधम इन पर्वतों पर आरूढ़ नहीं होते वे नरकगामी होते हैं। दिव्य 'देवतट' पर्वत पर स्थित होने से 'मुक्तिद्वार' खुल जाता है। वहाँ पर देहावसान होने से जीव को अवश्य मुक्ति मिलती है। मुनिवरों! अधिक पुण्य-वर्णन से क्या लाभ है? 'मालिका' की महाशक्ति को आप लोग निश्चित रूप में समझ लें ॥ २-२० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'मालिकामाहात्म्य' नामक
एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥